प्रौढ़ शिक्षा

अप्रैल—जून 2017
वर्ष 61 अंक—2

सम्पादक मण्डल

प्रो. भवानीशंकर गर्ग
(सरंक्षक)

श्री मृणाल पंत
श्री ए.एच.खान
डा. सरोज गर्ग
श्री दुर्लभ चेतिया
डा. डी.के.वर्मा
डा. उषा राय
डा. मदन सिंह
श्री एस.सी. खंडेलवाल
श्री राजेन्द्र जोशी

सम्पादक
डा. मदन सिंह

सहायक सम्पादक
बी. संजय

इस अंक में

सम्पादकीय

आधुनिकता के भीतर अंधकार (मुस्लिम महिलाओं में जागृति का रास्ता सही तालिम)
—तुहिन देब 5

ग्रामीण युवाओं में उद्यमिता हेतु क्षमता विकास प्रशिक्षण की आवश्यकता
—रीना आर्या 15

शिक्षा जगत में सदाबहार समस्याओं के निदान का इन्तजार
—राजेन्द्र मोहन शर्मा 20

अपना शौचालय बनवाना है
— बद्री प्रसाद वर्मा अनजान 24

पितृसत्ता का समापन 25

शिक्षा एवं साक्षरता दर में विकास केवल प्रौढ़ शिक्षा से सम्भव
— जसीम मोहम्मद 32

हमारे लेखक 40

मूल्य :रूपये 200/—वार्षिक

पत्रिका में व्यक्त लेखकों के विचार उनके वैयक्तिक विचार हैं, जिनके लिए संघ एवं सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है ।

Census 2011 - Database for Literacy Programmes

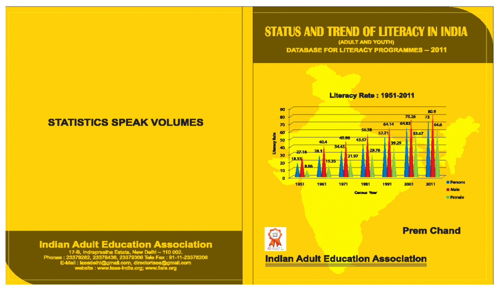

Indian Adult Education Association has brought out recently a book titled **Status and Trend of Literacy in India (Adult and Youth) Database for Literacy Programmes – 2011**. This book has 200 pages with 8 chapters and 17 tables. Annexure also gives district-wise information regarding literates, illiterates and literacy rates by sex and rural/urban areas for the age group 7 and above and illiterates, literates and literacy rates by sex and areas for adolescent (10-19) and youth (15-24) population – 2011.

The price of the book is Rs.800/- (US $ 90) per copy. Purchase order can be made by mail (directoriaea@gmail.com) indicating number of copies required and Demand Draft for total amount sent by post. The Demand Draft be drawn in favour of "Indian Adult Education Association" payable at New Delhi.

ताकि कोई फेक आईडी नहीं बल्कि सच्चा मित्र मिले

कहते हैं कि जीवन ईश्वर का दिया सबसे बहुमूल्य उपहार है। फिर ऐसा क्यों होता है कि हम कभी–कभी जीवन की तुलना किसी और चीज के साथ करने लगते हैं? केवल तुलना ही नहीं बल्कि अतीत और कभी–कभी वर्तमान की कठिनाईयों एवं नाकारात्मक अनुभवों की नजर से देखते हुए अपने ही जीवन का छिद्रान्वेषण करते हैं और उस मुकाम तक पहुंच जाते हैं जहां जीवन क्षुद्र, निरर्थक और बेमाने प्रतीत होने लगता है। ऐसे में उपर से चंगा–भला दिखने वाला व्यक्ति भी अंदर से उद्वेलित हो स्वयं ही अपनी जीवन से पीछा छुड़ाने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है।

गत 22 मार्च 2017 को दिल्ली के एक मेट्रो स्टेशन पर ट्रेन के सामने छलांग लगा के बीस वर्षीय छात्रा ने अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। इसके कुछ ही दिनों पहले गुरुग्राम (गुडगांव) स्थित एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी की एक महिला कर्मचारी ने कार्यालय के छत से कूद कर अपना जीवन समाप्त कर लिया। ये लोग आम आदमी थे हो सकता है इनके साथ घट रही घटनाओं की जानकारी शेष समाज तक नहीं पंहुच पाती होगी। पर निशब्द की बहुचर्चित युवा अभिनेत्री जिया खान की स्मृति तो अब तक सभी के जेहन में तरोताजा होगी। किस तरह उस अभिनेत्री ने हालात के समक्ष समर्पण करते हुए स्वयं को समाप्त करने का निर्णय लिया होगा। वस्तुतः ये सभी केवल याद दिलाने के लिए चंद उदाहरण मात्र हैं।

समाज में ऐसे लोगों की संख्या बहुत बड़ी है जो नैराश्य और अवसाद का शिकार हो जाते हैं। इनमें से कुछ लोग अपनी शिक्षा, समझ, संगति एवं संस्कार के बलबूते यथासंभव संघर्ष करते हैं और आज नहीं तो कल परिस्थितिजन्य समस्याओं का समाधान कर अवसाद से उबरते हुए जीवन पथ पर पुनः आगे की ओर बढ़ चलते हैं। पर कई ऐसे भी होते हैं जो निसंग होते हैं। जिनके पास तमाम भौतिक सुविधाओं के मौजूदगी के बावजूद कोई ऐसा संगी–साथी या मित्र नहीं होता जिससे वे अपनी हालात या मनोदशा सांझा कर सकें। ये लोग हालात से उबर नहीं पाते बल्कि धीरे–धीरे हालात के समक्ष समर्पण कर देते हैं। अपनी जिंदगी इनको बोझ प्रतीत होने लगती है और मौका मिलते ही ये ईश्वर की दी हुई सबसे बहुमूल्य उपहार से अपना रिश्ता सदा के लिए तोड़ लेते हैं। दुर्खिम अपनी किताब 'आत्महत्या' में लिखते हैं कि 'जब व्यक्ति बाहरी दुनियां से कट जाता है तब वह एकाकी होने लगता है। यथार्थ से कटते जाने की वजह से व्यक्ति के अंदर की संधर्ष करने की क्षमता खत्म हो जाती है। हताश व्यक्ति अंतिम विकल्प के तौर पर आत्महत्या को चुनता है।'

नैराश्य, अवसाद और इससे आगे बढ़ आत्महत्या ने दुनियां में आज बहुत बड़ा आकार ले लिया है। वैश्विक स्तर पर करोड़ों की संख्या में युवा व प्रौढ़ स्त्री–पुरूष अवसाद की चपेट में हैं और इनकी संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। इन लोगों को अपनी भावनाओं एवं संवेदनाओं को प्रकट करने का मौका नहीं मिलता। फेसबुक या व्हाटसअप जैसे सवांद के सोशल माध्यमों पर इन लोगों के सैकड़ों मित्र होते हैं पर वास्तविकता में ये एकाकी जीवन व्यतीत करते हैं। इस तरह के लोग भीड़

में होते हुए भी स्वयं को अकेला महसूस करते हैं। घर–परिवार में होकर भी खुद को उदास और निराश पाते हैं। इसलिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने वर्ष 2017 की थीम को अवासद : चलो बातचीत करे (Depression - Let's talk) है ताकि दुनियाभर में यह जागरूकता और सचेतनता उत्पन्न की जा सके की मनुष्य प्रारंभिक तौर पर सामाजिक प्राणी है और समाज में घुल–मिलकर रहते हुए अपनी सक्रिय भागीदारी से ही वह सदा प्रसन्नचित् रह सकता है।

दुर्खिम के अनुसार यदि नैराश्य, अवसाद और इससे आगे बढ़ आत्महत्या के मनोदशा से अपनी और भावी पीढ़ी को बचाना है तो जीवन की विविधता और व्यापक छटाओं से उसका परिचय कराना होगा। हमें उनके परिवेश को सष्जानात्मक और कलात्मक बनाने में मदद करनी होगी। बाजार निर्मित सामानों तथा वास्तविक प्रसन्नता में चुनाव करने की समझ पैदा करनी होगी। अवसाद को एकांत में दूर नहीं किया जा सकता बल्कि उसके लिए हमें समाज में वापस आना होता है।

यह जागरूकता और सचेतनता विकसित करने में शिक्षा की भूमिका अत्यंत ही महत्वपूर्ण एवं निर्णायक है। शिक्षा का मकसद बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना रहा है। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह व्यक्ति में अन्तर्निहित उत्कृष्टता की अभिव्यक्ति है। स्पष्ट है कि व्यक्तित्व विकास में तकनीकी कौशल के अलावा संवदेना, सहभागिता आदि भी सम्यक रूप से शामिल होने चाहिए हैं। वर्तमान शिक्षा घोर यांत्रिकता की शिकार हो गई है। पाठशाला अब प्रासादों में तब्दील हो रहे हैं तो शिक्षक मानवीय आदर्शों से क्रमशः दूर होते जा रहे हैं। ऐसे में शिक्षा और हमारी जिंदगी से जो चीज तेजी से गायब हो रही हैं वह है संवेदना और सहभागिता।

कभी वह दौर भी होता था जब छात्रों को व्यक्ति ही नहीं सम्पूर्ण प्रकृति के साथ तदात्म स्थापित करने की शिक्षा दी जाती थी। कहते हैं कि पशुओं को पीटते देख स्वामी रामकृष्ण परमहंस के पीठ पर छाले पड़ जाते थे। यह कुछ और नहीं जीवमात्र से तदात्म (empathy) की परकाष्ठा थी। इसके विपरीत आज हम दिन प्रतिदिन घोर असहिष्णुता की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। यह संस्कृति नहीं विकृति है जिसमें मनुष्य किसी भी तरह प्रसन्न नहीं रह सकता। इसलिए इस विरोधाभासी स्थिति पर गंभीर विमर्श किए जाने की आवश्यकता है। यह विमर्श जितना समाज में किए जाने की जरूरत है उतना ही जरूरत परिवार और शिक्षकों के बीच किए जाने की है। क्योंकि बच्चे जीवनभर अपने साथ घट रही घटनाओं का विवेचन अपने माता–पिता एवं शिक्षक से बचपन में प्राप्त शिक्षा के सापेक्ष में करते हैं। यदि बचपन में उन्हें यह अहसास कराया जा सके कि जीवन का वास्तविक आनंद समाज के साथ जुड़ कर रहने में है तो वे सहज ही अपनी बात दूसरों के साथ सांझा कर सकेंगे तथा दूसरों की बात सुनने, समझने और उसमें भागीदारी करने के लिए उत्सुक रहेंगे। जिससे उनके पास अपने जीवन के कठिन पलों एवं खुशनुमा एहसासों को सांझा करने के लिए यांत्रिक सोशल माध्यमों पर कोई फेक आईडी नहीं बल्कि व्यावहारिक जीवन में कोई सच्चा मित्र उपलब्ध होगा।

– बी. संजय

आधुनिकता के भीतर अंधकार

(मुस्लिम महिलाओं में जागृति का रास्ता सही तालीम से होकर गुजरता है)

— तुहिन देब

एक दिन एक बुद्धिजीवी मित्र, एक गवेषक के साथ मेरा परिचय कराते हुए, उनके सामने ही बोले 'ये मुसलमान हैं, लेकिन बहुत माडर्न (आधुनिक) हैं।' परिचय में कहे गए इस वाक्य में प्रशस्ति नहीं बल्कि इसके छद्‌मवेश में एक आक्रमण शामिल था। यह उस गवेषक को मालूम था। लेकिन गवेषक के द्वारा इसका विरोध करना संभव नहीं था। क्योंकि वे एक अल्पसंख्यक समुदाय से आते हैं, इस समाज में बड़े अकेले हैं और चारों ओर आधुनिकता से घिरे हुए हैं, जो यह सोचता है कि मुसलमान मतलब पिछड़ा, कट्‌टर सोच वाला और महिला विरोधी। पर यह सोच वास्तविकता जो कहीं अधिक जटिल और बहुरंगी है, से परे है।

हकीकत विस्तृत विश्लेषण की मांग करता है। केरल में 0—6 उम्र समूह के वर्तमान लिंगानुपात के अनुसार यहां प्रति 1000 लड़कों पर उपस्थित लड़कियों की संख्या 964 हैं जबकि 0—6 से ऊपर के उम्र समूह में यह लिंगानुपात 1000—1084 है। तमिलनाडु में 0—6 उम्र समूह में प्रति 1000 लड़कों पर 943 लड़कियाँ हैं लेकिन इससे ऊपर के उम्र समूह में 1000 लड़कों पर लड़कियों की संख्या 996 हैं। यदि समूचे देश की बात करें तो भारत में प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाओं की संख्या 943 हैं। ज्ञात है कि इसी दौर में अल्पसंख्यक मुसलमानों में यह अनुपात प्रति 1000 पुरुषों पर 951 महिलाओं की है। यदि 0—6 उम्र समूह की बात करें तो राष्ट्रीय लिंगानुपात के अनुसार 1000 बालकों पर 918 बालिकाएं हैं, वहीं अल्पसंख्यकों में 1000 बालकों पर 943 बालिकाएं हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जिन्हें पुरातनपंथी, कट्‌टर महिला विरोधी व पिछड़ा' कहा जाता है वह अल्पसंख्यक मुसलमान समुदाय बालिकाओं की संख्या कम कर लिंगानुपात को घटाने में ज्यादा रूचि नहीं लेता।

भारतीय मुस्लिमों की सामाजिक—आर्थिक स्थिति

भारतीय मुस्लिमों की सामाजिक—आर्थिक स्थिति के बारे में जस्टिस राजिन्दर सच्चर कमेटी की रिपोर्ट (2006) ने कई महत्वपूर्ण तथ्यों को उजागर किया था। सच्चर कमेटी ने पाया था कि ग्रामीण इलाकों में 62.2 प्रतिशत मुस्लिम आबादी के पास कोई जमीन नहीं है। शहरी इलाकों में 60 प्रतिशत मुस्लिम बालक स्कूलों का मुंह नहीं देख पाते हैं और ग्रामीण अंचलों में केवल 0.8 प्रतिशत और शहरों में 3.1 प्रतिशत ही स्नातक हैं। शिक्षा और रोजगार में उनकी स्थिति अन्य समुदायों कि तुलना में कमतर है। ग्रामीण इलाकों में गरीबी रेखा से

नीचे के 94.9 प्रतिशत मुस्लिम परिवारों को मुफ्त राशन नहीं मिलता है, केवल 3.2 प्रतिशत को ही सब्सिडी वाला लोन मिलता है और मात्र 1.9 प्रतिशत ही सरकारी अनुदान वाले खाद्य कार्यक्रमों से लाभान्वित होते हैं। कमेटी ने जांच में पाया कि शिक्षा और रोजगार में मुस्लिमों की स्थिति अन्य समुदायों की तुलना में पिछड़ती जा रही है। सन् 2011 में हुई आखिरी जनगणना के अनुसार देश में मुस्लिमों की आबादी 15 प्रतिशत है, लेकिन भारतीय प्रशासनिक सेवा में उनका प्रतिनिधित्व 3 प्रतिशत, भारतीय विदेश सेवा में 1.8 प्रतिशत और भारतीय पुलिस सेवा में 4 प्रतिशत ही है। सरकारी नौकरी में कार्यरत मुसलमानों की दर 5.4 फीसदी है। (राष्ट्रीय नमूना समीक्षा रपट 2011–12) वर्ष 2001 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार एक औसत मुस्लिम पुरूष और महिला दूसरे धर्मों के पुरूष और महिला के मुकाबले शिक्षा के मामले में बहुत पीछे हैं, यह स्थिति देश के लगभग सभी राज्यों में है। शहरी मुसलमानों में साक्षरता की दर बाकी शहरी आबादी के मुकाबले 19 प्रतिशत कम है। सन् 2001 में भारत के कुल 7.1 करोड़ मुस्लिम पुरूषों में सिर्फ 55 फीसदी ही साक्षर थे, जबकि 46.1 करोड़ गैर मुस्लिमों में यह आंकड़ा 64.5 फीसदी या दूसरी तरफ देश की 6.7 करोड़ मुस्लिम महिलाओं में केवल 41 फीसदी महिलाएं साक्षर थीं, जबकि 43 करोड़ गैर मुस्लिम महिलाओं में 46 फीसदी महिलाएं साक्षर थीं। 2011 में पूरे देश की साक्षरता दर 73 फीसदी थी तो मुसलमानों में साक्षरता दर 68.5 फीसदी थी। स्कूलों में मुसलमान लड़कियों की संख्या अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की तुलना में तीन प्रतिशत कम थी। 101 मुस्लिम महिलाओं में से केवल एक मुस्लिम महिला स्नातक है, जबकि 37 गैर–मुस्लिमों में से एक महिला स्नातक है। देश के हाईस्कूल स्तर पर मुसलमानों की उपस्थिति केवल 7.2 प्रतिशत है। गैर मुस्लिमों के मुकाबले 44 प्रतिशत कम मुस्लिम विद्यार्थी सीनियर स्कूल में पढ़ाई कर पाते हैं, जबकि महाविद्यालयों में इनका अनुपात 6.5 प्रतिशत है। स्नातक की डिग्री प्राप्त करने वाले मुसलमानों में केवल 16 प्रतिशत ही स्नातकोत्तर की डिग्री हासिल कर पाते हैं। इस तरह, रिपोर्ट ने मुस्लिम समुदाय के सामाजिक–आर्थिक पिछड़ेपन को साफ तौर पर प्रकट किया है।

सच्चर कमेटी एवं रंगनाथ मिश्र आयोग की अनुशंसाओं ने मुस्लिम समुदाय की अवस्था को स्पष्ट तौर पर उजागर करते हुए उनकी बेहतरी के लिए काफी संतुलित एवं प्रभावशाली पहल का रास्ता भी प्रशस्त किया है।

मुस्लिम महिलाओं के हालात

प्रति वर्ष 8 मार्च का दिन '' अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस'' के रूप में पूरी दुनिया में मनाया जाता है। लेकिन, हजारों–लाखों मुस्लिम लड़कियों से शायद ही इसका कोई वास्ता हो। सम्भव है कि इनमें से अधिकांश इसके बारे में जानती भी ना हों। एक तरफ महिला सशक्तीकरण को लेकर हमारे देश में अनेक तरह के कार्यक्रम किए जा रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ देश की आधी आबादी आज भी बुनियादी जरूरतों से महरूम है। बात यदि ''मुस्लिम

औरत'' की हो तो वहां इनका दर्जा अल्पसंख्यकों में भी अल्पसंख्यक है। करीब से इनकी जिंदगी देखने पर मालूम होता है कि इनको बुनियादी हक मसलन, पढ़ने का, सेहत का, नौकरी का, शादी का, तलाक वगैरह के लिए भी जद्दोजहद करनी पड़ रही है।

ये बात ठीक है कि वक्त के साथ इस समाज और इसके रीति–रिवाजों में छोटे–बड़े बदलाव आए हैं। जैसे आजादी के पहले मुसलमान औरत की जो हालत थी वह अब सुधरकर कुछ संवरी है। लेकिन अभी भी दूसरे मजहब की औरतों की तुलना में इनमें काफी पिछड़ापन बरकरार है।

मुस्लिम महिलाओं की शैक्षणिक यात्रा : घर के कोने से विद्यालय तक

मुस्लिम औरतों के हक तथा तालीम की राह का इतिहास बड़ा पेचीदा रहा है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में मुसलिम समाज में जिस आधुनिकता की शुरूआत हुई उसने बंगाल समेत देश भर के मुसलमानों के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में गहन परिवर्तन की आधारशिला रखी। स्वसमाज की महिलाओं की शिक्षा के मामले में पुरातनपंथी सोच बदलने लगे। मध्यमवर्ग सहित आम मुसलमानों का एक हिस्सा यह समझने लगा कि महिलाओं को अशिक्षित रखकर समाज की प्रगति संभव नहीं है। मुस्लिम महिलाओं के बीच भी यह बोध संचारित हुआ कि उनकी मुक्ति की कुंजी तालीम (शिक्षा) में निहित है।

सन् 1850 के इर्द–गिर्द पूना में जब महान समाज सुधारक ज्योतिबा फुले की प्रेरणा से क्रांतिज्योति सावित्री बाई फुले ने महिलाओं के लिए शिक्षा केन्द्र की शुरूआत की तो उसमें सबसे पहले सहयोग किया उसमान शेख और उनकी बहन फातिमा शेख ने। सावित्री बाई फुले और फातिमा शेख ने भरसक प्रयास करके, तमाम रूढ़िवादी सामाजिक विरोध का सामना करते हुए स्त्री शिक्षा की अलख जगाई। सन् 1919 में ''सौगात'' पत्रिका में नुरून्निसा खातून ने '' महिलाओं की शिक्षा'' शीर्षक निबंध में स्पष्ट रूप से कहा कि ''जब तक मुसलमान लड़कियों के लिए अलग स्कूल की स्थापना नहीं होती है तब तक उन्हें घर में ही शिक्षादान की व्यवस्था करनी पड़ेगी। आधुनिक शिक्षा के बिना मुसलमान महिलाएं आगे नहीं बढ़ पायेंगी।''

आज से करीब 143 वर्ष पहले बंगाल सूबे में पूर्वी बंगाल के कुमिल्ला में पति द्वारा परित्यक्ता, दो संतान की मां, फैजुन्निसा चौधुरानी (1834–1903) के द्वारा स्थापित कुमिल्ला गर्ल्स स्कूल ने नारी शिक्षा के प्रसार के मामले में महत्वपूर्ण भूमिका का पालन किया। सन् 1873 में फैजुन्निसा द्वारा स्थापित उच्च अंग्रेजी बालिका विद्यालय के साथ ही बालिकाओं के लिए होस्टल और मासिक छात्रवृत्ति की व्यवस्था भी की गई थी। देश में फैजुन्निसा का महिला शिक्षा क्षेत्र में अवदान अविस्मरणीय है क्योंकि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जब सर

सैयद अहमद खान, अब्दुल लतीफ आदि बुद्धिजीवी, महिला शिक्षा की ओर कोई ठोस पहल नहीं कर पाये, उस समय एक मुस्लिम महिला ने यह कारनामा कर दिखाया। फैजुन्निसा उच्च अंग्रेजी बालिका विद्यालय की स्थापना के 38 वर्ष बाद 1911 में रूकैय्या सखावत हुसैन द्वारा सखावत मेमोरियल स्कूल की स्थापना की गई।

बेगम रूकैय्या सखावत हुसैन (1880–1932) ने तमाम प्रतिकूलताओं के बावजूद मुस्लिम महिलाओं में तालीम के बारे में ठोस पहल की थी। पारंपरिक धार्मिक शिक्षा के बदले मुस्लिम महिलाओं के लिए शिक्षा का आधुनिकीकरण, पर्दा प्रथा की अज्ञानता व जड़ता, पुरूषप्रधान समाज व्यवस्था की रूढ़िवादी परंपराओं के खिलाफ संघर्ष के पथ में उन्हें अंधविश्वासी मुल्ला–मौलवियों के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। मुस्लिम समाज में स्त्री शिक्षा की अग्रदूत होने के साथ–साथ वे एक प्रगतिशील चिंतक व लेखिका भी थीं। उन्होंने स्त्री–पुरूष समानता को केन्द्रबिंदु बनाकर एक भावी काल्पनिक समाज का चित्र अपने उपन्यास ''सुल्ताना का सपना'' में उकेरा था। अपने कथा संकलन ''अवरोधवासिनी'' की 47 कहानियों में उन्होंने भारतीय महिलाओं की वेदना को चित्रित किया था।

उसी दौर में पहले महिलाओं की पत्रिका ''सौगात'' और फिर सन् 1947 की 20 जुलाई से कलकत्ता में मुस्लिम महिलाओं के लिए महिलाओं द्वारा निकाली गई पत्रिका ''बेगम'' की भूमिका उल्लेखनीय है। ''बेगम'' की प्रथम संपादक थीं कवियत्री सूफिया कमाल (जन्म 1911)। स्वयं कविगुरू रविन्द्रनाथ ठाकुर, सूफिया के काव्यग्रंथ 'सांझेर माया' पढ़कर बहुत प्रभावित हुए थे और उनका उत्साहवर्धन किया था। सूफिया, रूकैय्या के माध्यम से 1916 में स्थापित अंजूमन–ए–खवातिने इस्लाम' नामक महिला समिति से जुड़ीं। वे लगातार ब्रिटिश विरोधी आंदोलन और दंगाविरोधी क्रियाकलापों में बढ़–चढ़ कर भाग लेती रहीं।

'बेगम'' पत्रिका बंगाल की मुस्लिम महिलाओं की आवाज बन गई। बाद में इसका प्रकाशन ढाका से होने लगा। इसमें ''बेगम महिला क्लब'' के गठन ने लेखिकाओं, राजनैतिक शख्सियतों व समान विचारधारा वाले संस्कृति कर्मियों के मिलने–जुलने के लिए एक केन्द्र प्रदान किया जहां से औरतों ने अपने हक के लिए आवाज बुलंद की तथा 'और मजहब की औरतों की तरह' एकजुट होकर दुनिया से अपना हक मांगना शुरू कर दिया। देश के अन्य सूबों में भी कालान्तर में इस तरह के कुछ प्रयास हुए।

बंगाल के मुस्लिम महिला जागरण के युग में फजिलतुन्नेसा (1905–1975) एक विशिष्ट नाम है। ये देश की मुस्लिम महिलाओं में पहली स्नातक थीं। महिला शिक्षा व महिला मुक्ति पर उन्होंने शिखा, सौगात आदि पत्रिकाओं में नियमित रूप से कहानी व लेख लिखे।

पर्दा से सामाजिक आंदोलन के आंगन में आने वाली देश की कई और मुस्लिम महिलाओं के बारे में जानकारी मिलती है। जैसे कि 1930 के दशक में ''ऑल इंडिया वीमेन्स कांफ्रेस''ने महिलाओं के राजनैतिक–सामाजिक अधिकारों की रक्षा के लिए पहल की। 1930–31 में पहले गोलमेज सम्मेलन में जब महिलाओं को भाग लेने का अधिकार नहीं मिला तो लाहौर में मुस्लिम महिला जागरण के अग्रदूत मोहम्मद शफी की बेटी जहांनारा शाहनवाज, मद्रास की श्रीमती सुब्रमण्यम आदि ने मिलकर गोलमेज परिषद् के आयोजको को अपना मांगपत्र दिया। शाहनवाज की मां अमीरून्निसा पंजाब में अंजूमन–ए–खवातीन–ए–ईस्लाम की संस्थापक थीं और महिला आंदोलन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। 1935 में अंग्रेज सरकार ने 60 लाख महिलाओं के लिए वोट देने के अधिकार संबंधी कानून पारित किया। उसी वर्ष प्रादेशिक परिषद् और संसद में महिलाओं के लिए संरक्षित आसन का कानून बना। तद्नुसार 150 सदस्यीय प्रादेशिक परिषद् में 6 तथा 250 सदस्यीय केंद्रीय संसद में 9 सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की गईं। 1946 में केंद्रीय संसद के अधिवेशन में 14 महिलाएं थीं। इनमें से उत्तर प्रदेश से बेगम एजाज रसूल, बॉम्बे से हंसा मेहता, पंजाब से बेगम जहांनारा शाहनवाज और बंगाल से शायेस्ता इक्रामुल्लाह, मुस्लिम समाज का प्रतिनिधित्व कर रही थीं।

इनके अलावा पंजाब की बेगम कुदसिया एजाज रसूल मजबूती से पर्दा प्रथा का विरोध करती थीं और इसके खिलाफ जनसभा में अपनी बात रखती थीं। 1936 में संयुक्त प्रादेशिक विधान परिषद् के निर्वाचन में आरक्षित सीट के बदले अनारक्षित सीट से उन्होंने उलेमाओं और रूढ़िवादी मुस्लिमों के प्रबल विरोध के बावजूद चुनाव लड़ा और प्रबल बहुमत से जीतीं। चालीस के दशक में बेगम शरीफा हमीद अली, कुलसुम सायनी ने महिला मुक्ति व महिला शिक्षा के लिए प्रगतिशील संगठनों के साथ जुड़कर कई मुहिम चलाई। बेगम शरीफा को 1939 में राष्ट्रीय योजना कमेटी के तहत् महिला उपसमिति की सदस्य नियुक्त किया गया। कुलसुम, गोदावरी गोखले द्वारा बॉम्बे में छेड़े गए साक्षरता अभियान में उनकी प्रमुख सहयोगी थीं। बॉम्बे में असाक्षर महिलाओं को साक्षर बनाने के लिए उन्होंने ''राब्बार'' नामक एक समाचार पत्र प्रकाशित करना शुरू किया। अखिल भारत महिला सम्मेलन की कार्यकर्त्ता हाजरा अहमद 1937 में कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ीं और महिला संगठन के मुखपत्र ''रोशनी'' की संपादक बनीं। 1943 में महिलाओं के अधिकारों के पक्ष में ''राव बिल'' प्रस्तुत होने पर उसे लागू करने तथा हिंदू मुस्लिम एकता को मजबूत करने के लिए लेडी अब्दुल कादिर, फातिमा बेगम, एम कुरैशी आदि महिलाओं का योगदान भी अविस्मरणीय रहा है।

सांगठनिक प्रयास

मुआशिरे में औरतों की हालत और उनके हालात सुधारने के लिए पूरे देश में 1960 से ही कुछ लोगों ने और कुछ संगठनों ने अलग–अलग प्रयास करने शुरू कर दिए थे।

समाज सुधारक हमीद दलवाई ने 1966 में मुस्लिम महिलाओं को संवैधानिक इंसाफ दिलाने के लिए ऐतिहासिक पहल की। उन्होंने 22 मार्च 1970 में मुस्लिम सत्यशोधक मंडल की स्थापना महाराष्ट्र में की। मुस्लिम सत्यशोधक मंडल की ओर से पिछले पचास सालों में आम मुसलमानों के मसलों पर महाराष्ट्र के कोने–कोने में सामाजिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक मुद्दों पर सभा सम्मेलन, मोर्चे और धरना आदि किए जाते रहे हैं। मुस्लिम समाज के प्रबोधन का यह कार्य अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मुस्लिम महिलाओं को कानूनी हक दिलाने के लिए Women Under Muslim Law (मुस्लिम कानून के तहत् महिलाएं) नाम से अभियान चल रहा है। भारत में भी करीबन पचास मुस्लिम महिला संगठन, महिला अधिकारों के मुद्दों पर सक्रिय हैं जिनमें मुस्लिम महिला अधिकार परिषद, हमीद दलवई स्टडी सर्कल, मुस्लिम महिला मंच आदि उल्लेखनीय हैं। दुनिया में कई मुस्लिम देशों में मुस्लिम महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए कानूनी बदलाव किए गए हैं। 1999 में मुंबई के कुछ एक्टिविस्ट ने मिलकर 'मुस्ल्मि वीमेन राइट्स' नेटवर्क बनाया। संगठन में आंतरिक खामियों की वजह से इसको बाकायदा काम करने में वक्त लगा। इसी बीच 2005 में भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन (BMMA) नाम के संगठन की शुरूआत हुई। 20,000 सदस्यों वाले इस संगठन का जोर शादी के लिए रिश्तों के अधिकार (वैवाहिक अधिकार) और पर्सनल–लॉ–बोर्ड में सुधार लाने पर रहा है। इसके अलावा बड़े पैमाने पर मुस्लिम औरतों को उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों के बारे में जागरूक करना था। इसके साथ ही ये संगठन पर्दा प्रथा, बहुविवाह, हलाला और तीन तलाक जैसे संवेदनशील मुद्दों पर भी काम कर रहे हैं। इस बीच सईदा हमीद की अगुआई में मुस्लिम वीमेन फोरम भी बनाया गया। इस्लामिक विद्वान, मानवतावादी तथा धर्मनिरपेक्षता का परचम बुलंद करने वाले डॉ. असगर अली इंजीनियर, सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आजीवन संघर्ष करते रहे। डॉ. असगर अली इंजीनियर, इंस्टीट्यूट ऑफ इस्लामिक स्टडीज तथा भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन ने विभिन्न मुस्लिम देशों में कानूनी सुधार प्रावधानों का अध्ययन व मुस्लिम विद्वानों से विचार विमर्श कर तलाक–ए–बिद्दत, हलाला निकाह तथा बहुविवाह के खिलाफ मुस्लिम महिलाओं के हित में प्रावधान बनाकर ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड (AIMPLB) को दिया है। यह अलग बात है कि अभी तक उस पर कोई सकारात्मक रूख उत्पन्न नहीं हो सका है।

इसके अलावा अखिल भारतीय क्रांतिकारी महिला समिति, अखिल भारतीय जनवादी महिला संगठन तथा भारतीय महिला फेडरेशन जैसे कई संगठन भी इस क्षेत्र में सक्रिय हैं। इन सभी की मांग है कि मुस्लिम औरतों के हक मानवाधिकारों में शामिल हों। इन संगठनों की पुरजोर कोशिश यह साबित करने की है कि मुसलमान औरत महज एक गूंगी गुड़िया नहीं है, उसकी भी आवाज है, सपने हैं, अरमान हैं, विचार हैं, दिमाग है, जिस पर उसे नाज़ है।

वर्तमान में भारत में 6 करोड़ 50 लाख मुस्लिम औरतें हैं लेकिन फिर भी वे एक संगठित ताकत के रूप में उभर नहीं पाई हैं। इसकी एक बड़ी वजह है अशिक्षा। 1983 में पहली बार 'गोपाल सिंह कमेटी' बनाई गई जिसने मुसलमानों को भारत में पिछड़े वर्ग का दर्जा दिया। इस कमेटी की दलील 'इनके सामाजिक–आर्थिक पिछड़ापन' की ओर इशारा करती है। सरकारी रिपोर्ट के मुताबिक शैक्षिक, कानूनी, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की गैरहाजिरी में मुस्लिम औरत, देश में हाशिए पर जी रही हैं। परंपरागत ढर्रे पर चलने वाली इन औरतों की सबसे बड़ी कमजोरी है उनका आर्थिक और सामाजिक पिछड़ापन। ये दोनों ही कारक इनकी अशिक्षा का सबब बनती हैं।

उच्च शिक्षित मुस्लिम महिलाओं के लिए दूल्हा ढूंढना आज भी काफी मुश्किल काम है। सह शिक्षा मुस्लिम महिलाओं को पथभ्रष्ट कर सकती है, लिहाजा उनके लिए धार्मिक शिक्षा और एक अच्छी गृहिणी बनाने के लिए नैतिक शिक्षा देना ही सबसे बेहतर विकल्प है– ये कुछ ऐसी धारणाएं हैं, जिनके कारण भारत में मुस्लिम महिलाएं शिक्षा के मामले में पिछड़ी हुई हैं। यह तथ्य सरकार समर्थित एक अध्ययन रिपोर्ट में सामने आया है। इसमें मुस्लिम समाज की यह सोच भी उजागर हुई है कि मुस्लिम लड़कियों को युवावस्था से पहले तक ही पढ़ाई करनी चाहिए। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा मुस्लिम महिलाओं की शैक्षणिक प्रगति की योजना तैयार करने के उद्देश्य से बनाई गई इस रिपोर्ट में बताया गया है कि मुस्लिम लड़कियों के उच्च शिक्षा से दूर रहने के सबसे सामान्य कारण उनकी युवावस्था, महिला टीचर की कमी, लड़कियों के लिए अलग स्कूल न होना, परदा प्रथा, धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का विरोध, जल्दी शादी होना और समाज का विरोधी और दकियानूसी रवैया है।

अध्ययन के मुताबिक, स्कूल न जाने वाले 6 से 13 साल के मुस्लिम बच्चों के समूह में 45 फीसदी लड़कियां हैं। राजस्थान, झारखंड, उत्तरप्रदेश, बिहार और उड़ीसा में मुस्लिम लड़कियों की साक्षरता का स्तर सबसे खराब है। दक्षिणी राज्यों में स्थिति कुछ बेहतर है और शायद इसकी वजह वहां समाज सुधार आंदोलन तथा तकनीकी और व्यावसायिक शैक्षणिक संस्थानों का अधिक होना है। मुस्लिम लड़कियों के उच्च शिक्षित न होने की एक अहम वजह मुस्लिम समाज की यह सोच भी है कि ज्यादा पढ़ी–लिखी लड़की को योग्य वर नहीं मिलेगा। उनका मानना है कि गरीबी और सरकारी नौकरी के प्रति अलग सोच की वजह से गिने–चुने मुस्लिम लड़के ही उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। अध्ययन के अनुसार सिर्फ 12.5 फीसदी मुस्लिम ही सह शिक्षा के पक्ष में हैं। मुस्लिम समुदाय में कामकाजी महिलाओं का प्रतिशत भी अन्य समुदाय की तुलना में कम है। इसके अलावा समाज में यह सोच भी प्रभावी है कि लड़कियों को दीनी तालिम देकर एक शादीशुदा परम्परागत तथा परिवार के प्रति निष्ठावान अनुशासित महिला तैयार करना ही पर्याप्त है, दुनियावी और वैज्ञानिक शिक्षा की उनको ज्यादा जरूरत नहीं है।

इसी प्रकार का एक और उदाहरण साक्षरता की दर में महिला–पुरूष असमानता का है। यह सही बात है कि सामग्रिक रूप से मुसलमानों में साक्षरता की दर राष्ट्रीय दर से भी कम है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वे अपने बच्चों को स्कूल भेजना नहीं चाहते। कई अध्ययनों से पता चला है कि कई इलाकों में मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में बच्चों के लिए स्कूल आवश्यकता से कम हैं। जहां स्कूलों की पर्याप्त उपलब्धता होती है मुसलमानों में लड़के और लड़कियों को समान आग्रह से स्कूल भेजा जाता है। जनगणना 2011 के आंकड़ों के मुताबिक शिक्षा के मामले में लड़कों और लड़कियों में भेदभाव भी तुलनात्मक रूप से कम होता दिखता है। उदाहरणार्थ राष्ट्रीय स्तर पर साक्षरता दर में लड़कियाँ, लड़कों से 16.2 प्रतिशत पीछे हैं, मतलब साक्षरता के मामले में जेंडर गैप 16.2 प्रतिशत है। वहीं मुसलमानों में साक्षरता के मामले में जेंडर गैप 12.2 प्रतिशत है। मतलब मुसलमान पुरूषों की साक्षरता दर के मुकाबले में मुस्लिम महिलाएं 12.2 प्रतिशत पीछे हैं। यहां मुसलमानों में साक्षरता दर के मामले में पुरूष–महिला के बीच भेदभाव सबसे कम प्रतिफलित हो रहा है।

साक्षरता में हिन्दुओं से आगे हैं महाराष्ट्र के मुस्लिम

महाराष्ट्र में मुस्लिम समुदाय ने साक्षरता दर में हिंदुओं को पछाड़ दिया है। वर्ष 2015–16 के लिए राज्य की आर्थिक सर्वेक्षण रिपोर्ट में धर्म के अनुसार सूचनाएं उपलब्ध हैं। यह रिपोर्ट विधानसभा में 2016–17 का बजट पेश होने से एक दिन पहले पेश की गई थी।

इसमें कहा गया है कि महाराष्ट्र में मुस्लिम समुदाय कुल आबादी का 11.5 फीसदी है। इनमें से 83.6 फीसदी मुस्लिम साक्षर हैं। वहीं राज्य में हिन्दुओं की कुल आबादी 79.8 फीसदी है जिनमें 81.8 फीसदी लोग साक्षर हैं। हालांकि राष्ट्रीय स्तर पर मुस्लिमों में साक्षरता का औसत महाराष्ट्र के मुकाबले काफी नीचे (68.5 फीसदी) है। राज्य में वयस्क साक्षरता 2001 में 76.9 फीसदी थी और 2011 में यह बढ़कर 82.3 फीसदी हो गई है। ईसाई समुदाय राज्य में सिर्फ 1 फीसदी है जिनमें 92.3 फीसदी साक्षर हैं।

मुस्लिम महिलाओं में जागरण

मुस्लिम महिलाओं की ठहराव को तोड़ते हुए पहली बार 1986 में शाहबानो ने शांत पानी में कंकड़ मारा। उन्होंने अपने अधिकार की मांग को लेकर न्यायालय का दरवाजा खटखटाया तो पूरे देश में एक हलचल सी पैदा हो गई। मर्दवादी और सामाजिक आडंबर से परिपूर्ण समाज ने इसे स्वीकार नहीं किया। वो पहली चिंगारी थी जो धीरे–धीरे मुस्लिम समाज में सुलगती रही। हालिया तीन तलाक की शिकार एक और महिला सायरा बानो अपनी फरियाद लेकर सर्वोच्च न्यायालय पहुंच गई हैं। ये महज एक मामला नहीं है, ऐसे हजारों मामले हैं।

हिंदुस्तान की मुस्लिम महिलाएं रोज इनसे दो–चार हो रही हैं। मुस्लिम महिलाएँ पूरे देश में अब धार्मिक रूढ़िवादियों के खिलाफ आवाज उठा रही हैं और महिला विरोधी तीन तलाक, हलाला और बहु विवाह को अमान्य कर भारतीय संविधान के तहत् अपने लिए न्याय की मांग कर रही हैं। उलेमा, शरीयत के कानून के तहत इसमें कोई बदलाव नहीं चाहते, वे यथास्थिति चाहते हैं और इसे धर्म पर हमला मानते हैं। जबकि मुस्लिम महिलाओं का शिद्दत से कहना है कि नाइंसाफी को धर्म का जामा नहीं पहनाया जा सकता।

मुस्लिम महिलाएं अपने सपने, इच्छा व अनुभव को बांटें व उसे विकसित करें तथा दूसरे समुदाय की महिलाओं के साथ एक समतापूर्ण समाज के निर्माण में उनकी भागीदारी हो, इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव निम्नरुप हैं –

- मुस्लिम पर्सनल लॉ का कोडीफिकेशन करते हुए एकतरफा जुबानी या लिखित तलाक, बहुपत्नित्व और हलाला जैसी प्रथाओं को खारिज कर उन पर तुरंत पाबंदी लगाई जाय और मुस्लिम महिलाओं को कानूनी अधिकार दिलाने के लिए ऐसे विवादों का निर्णय न्यायालयीन प्रक्रिया द्वारा ही सुलझाया जाए।
- भारत के सभी लिंग, धर्म, जाति, पंथ के लोगों के पारिवारिक विवाद सुलझाने के लिए समान अधिकार और उन पर होने वाले अन्याय का प्रतिकार करने के लिए न्यायालयीन प्रक्रिया द्वारा न्याय प्राप्त करने का समतापूर्ण अधिकार हो। इसलिए धर्मनिरपेक्ष समतावादी भारतीय समाज के हित में संविधानात्मक मूल्यों पर आधारित समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) का समुचित प्रारूप (Model) बनाकर ही उस पर उचित बहस हो। अन्यथा इससे मुस्लिम महिलाओं में असुरक्षा और बढ़ेगी।
- जिला स्तर पर फैमिली कोर्ट की स्थापना हो या जहाँ फैमिली कोर्ट है वहां विभागीय स्तर पर महिलाएं अपने पारिवारिक सवालों पर न्याय की मांग कर सके ऐसा प्रावधान हो।
- भारतीय मुसलमानों के हालात सुधारने के लिए राजेन्द्र सच्चर समिति, रंगनाथ मिश्रा आयोग, डॉ. मेहमूद–उर–रहमान समिति द्वारा की गई सिफारिशों पर दृढ़ता से अमल किया जाए।
- मदरसों को बेहतर संरचनात्मक सुविधाएं प्रदान की जाएं। मदरसों में आधुनिक, वैज्ञानिक व तकनीकी शिक्षा पर जोर दिया जाए। दीनी तालीम के साथ–साथ दुनियावी तालीम पर विशेष जोर दिया जाए।

इंसानियत का तकाजा है कि वह इंसान को अज्ञानता से निकालकर इल्म (ज्ञान) की रोशनी में दाखिल करे। तालीम से इंसान की ताकत और लोकतांत्रिक मूल्यों में इज़ाफ़ा होता है। भारत की मुस्लिम महिलाएं, गरीबी और अशिक्षा जैसी समस्याओं से जूझते हुए भी

सार्वजनिक जीवन में सक्रिय हो रही हैं। मुस्लिम मध्यवर्ग (जो सन 1980 के दशक में उभरना शुरू हुआ) और निम्न वर्ग की महिलाओं में शिक्षा पाने की जबरदस्त ललक देखी जा सकती है।

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के 116वें साल में अगर मुस्लिम औरत इतना समझ रही है कि महिलाओं में बेदारी का रास्ता, 'जागृति का रास्ता' तालीम से होकर गुजरता है, तो सही मायनों में वो सशक्तीकरण की तरफ बढ़ रही हैं। उनकी इस हिम्मत को समूचे समाज द्वारा सराहा जाना चाहिए।

हमारे लिए धर्मनिरपेक्षता का अर्थ समझना महत्वपूर्ण है, क्योंकि हममें से कुछ लोग हैं जो धर्मनिरपेक्षता के नाम पर धर्म को नष्ट करना चाहते हैं। हमारी धर्मनिरपेक्षता धर्म विरोधी नहीं है, ना वह धर्म को नष्ट करने के पक्ष में है। मैं साफ तौर पर यह कहना चाहूंगा कि कोई भी व्यक्ति, जो यह समझता है कि धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्म का विनाश है या यह कोई धर्म विरोधी कार्य है, वह धर्मनिरपेक्षता शब्द के साथ अन्याय कर रहा है, वह हमारे राष्ट्र के साथ अन्याय कर रहा है। कुछ लोग ऐसे हैं जो इसमें विश्वास रखते हैं उन्हें अपनी सोच बदल लेनी चाहिए क्योंकि वह हमारे देश के लिए खतरनाक है।

धर्मनिरपेक्षता आवश्यक है, क्योंकि हमारे जैसे बहुलतावादी समाज में राजनीति और सरकार चलाने को धर्म से अलग रखना आवश्यक है। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो हम देश को विखंडित करने और राष्ट्र को नष्ट करने का भारी खतरा उठाते हैं। शायद इसका प्रभाव केवल राष्ट्र पर होने वाले प्रभाव से कहीं अधिक होगा। हम राष्ट्र को तो खो देंगे ही, दुनिया भी मानव समाज को एक सूत्र में बांधने का प्रयास खो देगी।

–राजीव गांधी

ग्रामीण युवाओं में उद्यमिता हेतु क्षमता विकास प्रशिक्षण की आवश्यता

– रीना आर्या

आज का युग औद्योगिक युग है तथा औद्योगीकरण व औद्योगिक विकास के बिना किसी भी देश के सम्यक विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। औद्योगीकरण से रोजगार, जीविकोपार्जन तथा जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने के अवसर उत्पन्न होते हैं, जिससे बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। आज भी भारत में ऐसे भू–भाग हैं, जहां औद्योगीकरण की किरण अब तक नहीं पहुंच सकी है। इसलिए सरकारी नीतियों का उद्देश्य शहरी औद्योगीकरण के साथ–साथ ग्रामीण पिछड़े क्षेत्रों तथा पर्वतीय इलाकों में भी वहां के स्थानीय जरुरतों एवं पर्यावरण के अनुकूल उद्योग स्थापित करना है। हमारे देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास के लिए उनका औद्योगीकरण होना अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही नवयुवक और युवतियों में उद्यमिता विकास के लिए समुचित वातावरण सृजित करने तथा आवश्यक संसाधन भी उपलब्ध कराने आवश्यक हैं। आज के युग में उद्यमिता विकास हेतु अनेक क्षेत्रों में नये विकल्प खुले हैं, इसलिए शिक्षण संस्थाओं में भी व्यावसायिक विषयों को प्राथमिकता देने की बात जोर पकड़ती जा रही है, जिससे कि यथासमय युवा नैतिक मूल्यों के साथ–साथ तकनीकी और व्यवसायपरक ज्ञान व कौशलों का विकास कर रोजगार प्राप्त कर आर्थिक स्तर पर सफलता प्राप्त कर सकें। यह कल्पना कि उद्यमी उत्पन्न होते हैं, बनाये नहीं जा सकते हैं, अब लुप्त होने लगी है। सावधानी पूर्वक अभिकल्पित तथा क्रमानुसार चलाये गये उद्यमिता विकास कार्यक्रम इस उपकल्पना गृहीत पक्ष को सुदृढ़ करते हैं कि उद्यमी बनाये भी जा सकते हैं। उद्यमिता, लघु उद्योग तथा प्रबन्ध के विशेषज्ञ इस दृष्टिकोण को मानते हैं कि यह एक बहु–विषयी क्षेत्र (multi disciplinary area) है। उद्यमिता को प्रोत्साहित करने वाले प्रशिक्षक/विशेषज्ञ को अनेक विषयों, जैसे प्रबन्ध, अर्थशास्त्र, नैतिकशास्त्र, समाजशास्त्र, वित्त तथा लेखा, तकनीकी व सरकार की व्यापार नीतियों सहित स्थानीय पारिस्थितिकी और संसाधनों का समुचित ज्ञान होना चाहिए, जिससे वे उद्यमिता विकास सम्बन्धी प्रभावी प्रशिक्षण कार्यक्रमों का नियोजन और संचालन कर सकें।

प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों के युवा सीमित विषयों की जानकारी रखते हैं, जबकि उद्यमिता के लिए बहुआयामी ज्ञान व कौशलों की आवश्यकता होती है। अक्सर ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधा एवं अवसरों की कमी होने के कारण अधिकांश युवा परम्परागत पाठ्यक्रमों में शिक्षा प्राप्त कर रोजगार की तलाश में शहरी क्षेत्रों की ओर निकल पड़ते हैं। उत्तराखण्उ के पर्वतीय जिलों में इन्हीं कारणों से सरकारी सेवाओं में रोजगार के लिए शिक्षित बेरोजगारों का अत्यधिक

दबाव है। यह स्थिति प्रतिवर्ष अधिक जटिल होती जा रही है। युवाओं के पलायन से इस नवगठित पर्वतीय राज्य के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। नये राज्य के समक्ष अनेक चुनौतियां हैं, जिनके समाधान में इस क्षेत्र के युवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, किन्तु उन्हें इस क्षेत्र में रोकने के लिए स्थानीय स्तरों पर रोजगार और आर्थिक विकास के समुचित अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। सरकारी क्षेत्र में सीमित रोजगार के अवसरों के फलस्वरूप उद्यमिता विकास ही सर्वाधिक कारगर विकल्प है, जिससे ग्रामीण युवा न केवल स्वरोजगार प्राप्त कर आर्थिक रूप से सम्पन्न होंगे, अपितु स्थानीय संसाधनों की गतिशीलता व उपयोगिता बढ़ेगी और वे अन्य युवाओं के लिए भी व्यवसाय के अवसर उत्पन्न कर सकेंगे। अतः ग्रामीण युवाओं में उद्यमिता विकास के लिए विशेष प्रशिक्षणों की आवश्यकता है। उद्यमिता सम्बन्धी क्षमताओं का विकास करके ही ग्रामीण युवाओं में एक सफल उद्यमी के गुण और निपुणताएं विकसित की जा सकती हैं। यद्यपि सरकार द्वारा उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत इस प्रकार के प्रशिक्षणों का संचालन किया जा रहा है किन्तु ये प्रशिक्षण अधिक प्रभावी नहीं बन पा रहे हैं।

उद्यमी वह व्यक्ति है, जो निश्चित मूल्य पर प्रतिकारक सेवाएं इस उद्देश्य से खरीदता है कि उनके उत्पाद को भविष्य में किसी भी मूल्य पर बेच सके। *(कैटलीन)*, बहुआयामी कर्ता के रूप में उद्यमी वह उत्प्रेरक है, जो भौतिक, प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का उपयोग, उत्पादन संभावनाओं में परिवर्तित करता है। *(शुम्पीटर)*, उद्यमी वह व्यक्ति है, जो हर क्षण नवीनता की खोज में रहता है। *(पीटर ड्यूकर)* अतः कहा जा सकता है कि उद्यमी वह व्यक्ति है, जिसका अपना मौलिक एवं साहसी विचार है, जो नवनिर्माण कर्ता है, उसमें आर्थिक अवसरों को पहचानने की क्षमता है। उद्यमी से ही उद्यमिता जुड़ी है।

वस्तुतः उद्यमी में विद्यमान प्रभावी गुणों से उत्पन्न भावना ही उद्यमिता है। समर्पण की भावना उद्यमिता है। उद्यमिता चरित्र, व्यवहार और कौशल है। आर्थिक क्षेत्र में उद्यमिता का अर्थ है – नये विचार सामने रखना, उत्पाद सेवाओं एवं स्रोतों को कार्य में लाना, उत्पादन सेवाओं को संगठित करना और अन्त में विकास एवं श्रेष्ठता के लिए अनवरत् रूप से प्रयत्न करते रहना व जोखिम सहित ऐसी वस्तुओं का विपणन करना है। सामान्य तौर पर उद्यमिता, अवसर पहचानने तथा उसे प्राप्त करने हेतु क्रियान्वयन की प्रक्रिया है।

उत्तराखण्ड के ग्रामीण युवाओं में उद्यमिता की भावना हृदय में बीजस्वरूप विद्यमान है। साथ ही उद्यमिता गुणों और कौशल विकास की अपार सम्भावनाएं भी निहित हैं। किन्तु अवसरों, परिवेश और प्रेरणा के अभाव में वे इस दिशा में अन्तर्निहित गुणों और क्षमताओं का विकास नहीं कर पाते हैं। स्थानीय स्तरों पर इस दिशा में क्षमता विकास के प्रभावी प्रशिक्षण उनके लिए उद्यमिता विकास के जीवन द्वार खोल सकते हैं।

उद्यमिता विकास प्रशिक्षण के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् होने चाहिए –

- नियोजित प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यवस्थित व क्रमबद्ध रूप से युवाओं में उद्यमिता के प्रति अभिप्रेरणा और सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न करना।
- उद्यमिता सम्बन्धी ज्ञान, अभिवृत्ति और कौशल के विकास और संवर्द्धन में सहायक होना।
- युवाओं की उद्यम सम्बन्धी आवश्यकताओं और जिज्ञासाओं की पूर्ति में सहायक होना।
- उद्यमिता विकास सम्बन्धी बहुआयामी गतिविधियों के सम्बन्ध में व्यावहारिक जानकारी देना।
- युवाओं में व्यवसाय तथा उद्यम के क्षेत्र में प्रभावी परिणामों की प्राप्ति सम्बन्धी क्षमता व योग्यता बढ़ाने में सहायक होना।
- पर्वतीय क्षेत्र की जीवन दशाओं को दृष्टिगत रखते हुए युवाओं को उद्यमिता विकास हेतु बहुपक्षीय विषयों, उपागमों और कार्यनीतियों से अवगत कराना।

ग्रामीण युवाओं में उद्यमिता सम्बन्धी क्षमता विकास प्रशिक्षण में प्रमुख रूप से उद्यमिता सम्बन्धी समझ और मूल्य विकसित करना आवश्यक है। ताकि वे उद्यम, उद्यमी और उद्यमिता विकास को भली प्रकार समझ सकें। वे किस प्रकार से एक सफल उद्यमी बन सकते हैं, यह अभिप्रेरणा और मूल्य उनमें विकसित किए जाने चाहिए। साथ ही सूक्ष्म स्तरीय नियोजन, उद्यम प्रबन्धन, वित्तीय प्रबन्धन व अनुशासन, उद्यमिता से जुड़े विधिक प्रावधान व प्रतिक्रियाएं, स्थानीय संसाधनों का प्रबन्धन व उपयोग, ग्राम आधारित व आजीविका आधारित परियोजनाओं का ज्ञान, गुणवत्ता नियंत्रण, विपणन, प्रचार व विज्ञापन कौशल, उद्यम में क्षतिपूर्ति व आपदा प्रबन्धन, टीमवर्क सम्बन्धी ज्ञान और निपुणताओं का विकास इन प्रशिक्षणों द्वारा किया जाना चाहिए।

वस्तुतः उत्तराखण्ड में मात्र पर्यटन, उद्यानिकी, वानिकी तथा इनसे जुड़े प्रमुख लघु उद्योगों के माध्यम से ही हजारों युवाओं को प्रशिक्षण के द्वारा स्वरोजगार के क्षेत्र में संलग्न कर आर्थिक क्षेत्र में आत्म निर्भरता प्राप्त की जा सकती है। किन्तु इस दिशा में निम्न स्तरों पर भी समन्वित और दीर्घकालीक प्रयास किए जाने चाहिए:

1. प्रशिक्षण से पूर्व शिक्षा के क्षेत्र में।
2. उद्यमिता विकास प्रशिक्षणों को प्रभावी बनाने में।
3. प्रशिक्षण के उपरान्त युवाओं को स्वरोजगार हेतु समुचित सुविधाएं और संसाधन जुटाने में।

उक्त तीनों स्तरों पर ध्यान केन्द्रीत करने की आवश्यकता है, अन्यथा उद्यमिता विकास सम्बन्धी प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त ग्रामीण युवा अपने वास्तविक लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल नहीं हो पायेंगे। इन तीनों स्तरों पर प्रभावी रूप से कार्य करने के सम्बन्ध में प्रमुख सुझाव निम्नवत हैं –

- गुणात्मक शिक्षा एवं व्यावहारिक शिक्षा पर बल दिया जाए तथा शिक्षा को उद्यमशीलता से जोड़ा जाए।
- माध्यमिक व उच्च शिक्षा में व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के अध्ययन सुविधाओं को बढ़ाया जाए। ग्रामीण व पर्वतीय क्षेत्रों में शिक्षण संस्थाओं को विकसित एवं विस्तृत करने को प्राथमिकता प्रदान की जाए, जिससे छात्र–छात्राओं में स्वरोजगार के प्रति अभिवृत्ति विकसित हो सके।
- शिक्षण संस्थाओं में रोजगार परामर्श केन्द्रों के माध्यम से उद्यमिता विकास को प्रोत्साहित किया जाए।
- सामुदायिक महाविद्यालयों (community colleges) व ग्रामीण विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाए। इन संस्थाओं में ग्राम आधारित व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के अध्ययन की सुविधाएं प्रदान की जाए।
- अनौपचारिक एवं प्रसार शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा व संचार माध्यमों द्वारा युवाओं में उद्यमिता विकास शिक्षा का विस्तार किया जाए।
- युवाओं से सम्बन्धित योजनाओं और कार्यक्रमों में उद्यमशीलता सम्बन्धी विषयों व गतिविधियों को सम्मिलित किया जाए।
- सरकार द्वारा संचालित उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत संचालित प्रशिक्षणों की गुणवत्ता में व्यापक सुधार किया जाए।
- ग्रामीण युवाओं को क्षेत्र में सफल उद्यमियों के अनुभवों को जानने हेतु अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। इस प्रकार की गतिविधियों को प्रशिक्षण में सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- प्रशिक्षणों में ग्रामीण युवतियों की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित करने व उनमें प्रशिक्षण के दौरान ड्रापआउट रोकने हेतु विशेष प्रावधान किए जाने चाहिए।
- उद्यमिता विकास प्रशिक्षणों का नियमित रूप से अनुश्रवण व मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
- युवाओं में उद्यमिता विकास के गैर परम्परागत और नवीन क्षेत्रों से अवगत कराने के सक्रिय प्रयास किए जाने चाहिए।
- पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों के प्रशिक्षित युवाओं को उद्यम स्थापित करने हेतु विशेष रियायतें वे सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए।
- ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करने हेतु आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं को बढ़ाया जाना चाहिए, जिससे कि प्रशिक्षित और प्रोत्साहित युवा

उद्यमियों को आधारभूत सुविधाओं (विद्युत, परिवहन, सूचना नेटवर्क, ऋण व तकनीकी सहयोग आदि) के अभाव में इस दिशा से विमुख होने से रोका जा सके।

अतः युवाओं में प्रशिक्षणों के द्वारा उद्यमिता विकास को बढ़ाकर उत्तराखण्ड से न केवल कार्यशील जनसंख्या के पलायन जैसी बड़ी समस्या का स्थायी हल निकाला जा सकता है, अपितु इससे स्थानीय स्तर पर मानवीय तथा भौतिक संसाधनों के समुचित उपयोग और विकास के द्वारा नवनिर्मित राज्य के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के नए द्वारा भी खुल सकेंगे।

संदर्भ

1. शर्मा, वी.के., 2008–09, औद्योगिक प्रबन्ध एवं उद्यमिता विकास, वी.बी.पी. पब्लिकेशन प्रा.लि, मेरठ।
2. पीटर किल्वर्ड, 1971, इंटरप्रिन्योरशिप एण्ड इकोनॉमिक डेवलपमेंट, फ्री प्रेस, न्यूयार्क।
3. शुम्पीटर जोसेफ, 1949, इकोनॉमिक थ्योरी ऑफ इंटरप्रिन्योरियल हिस्ट्री चेन्ज एण्ड दि इंटरप्रिन्योरशिप, मास हावर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।
4. सरवनवाल पी., 1987, इंटरप्रिन्योरियल डेवलपमेंट, एस.पी.के. पब्लिकेशन्स हाऊस, चेन्नई।
5. कोठियाल, एल. मोहन 2001–02, 'मन्थन' क्रिएटिव मीडिया ग्रुप पौड़ी गढ़वाल।
6. नौटियाल, आर. आर., 2003 उद्यमिता विकास की अवधारणा एवं उद्देश्य, उद्यमिता विकास, सम्पादित–एस.एस. रावत, प्रौढ़ सतत् शिक्षा एवं प्रसार विभाग, हे. न.ब.ग.वि.वि. प्रकाशन, श्रीनगर।

जब हम बाधाओं का सामना करते हैं, हम अपने साहस और फिर से खड़े होने की ताकत के छिपे हुए भण्डार को खोज पाते हैं जिनका अकसर हमें पता नहीं होता कि वो हैं। और केवल तब जब हम असफल होते हैं हमें यह एहसास होता है कि संसाधन हमेशा से हमारे पास थे। हमें केवल उन्हें खोजने और अपनी जीवन में आगे बढ़ने की जरुरत होती है।

– अब्दुल कलाम

शिक्षा जगत में सदाबहार समस्याओं के निदान का इन्तजार

राजेन्द्र मोहन शर्मा

भारत जैसे सनातन संस्कृति का सदाबहार देश है वैसे ही यहां की समस्याएं भी सदाबहार हैं। ये समस्याएं इतनी जवान हैं कि इनके देखते–भुगतते कई पीढियां बीत गईं पर ये लगभग जस के तस बनी हुई हैं। किसान, मजदूर, शिक्षा, जनसंख्या से लेकर स्वास्थ्य, रोजगार, भुखमरी और मिलावट की भौतिक समस्याएं यहां जितनी गहरी हैं उतनी ही हरी जड़ें है सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं की। जैसे परीक्षा में घिसे–पिटे सवाल वैसे ही उत्तरदाता के रटे–रटाए जवाब। दोनों का अन्तरसंबंध बस इतना कि समस्याएं और सवाल संख्यात्मक रूप से बढ़ रहे हैं तो समाधान तथा निदान के उपाय गुणात्मक रूप से बढ़ रहे हैं। लेकिन शिक्षा का क्षेत्र ऐसा है जिस पर तत्काल गंभीरतापूर्वक सार्थक प्रयास एवं निर्णायक पहल किए जाने की आवश्यकता है। शिक्षा कैसी हो, असाक्षरों की विशाल आबादी को साक्षर कैसे बनाया जाए, जो साक्षर बन गए हैं उन्हें हुनरमंद कैसे बनाया जाए, पाठयक्रम का स्वरुप क्या हो, शिक्षा किस माध्यम से प्रदान किया जाए इत्यादि कुछ ऐसे सवाल हैं जिनके धेरे में शिक्षा आजादी के बाद से अब तक घिरी हुई है।

कोठारी कमीशन से लेकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति तक अनेक आयोग बने, प्रतिवेदन और सिफारिशें की गईं। लेकिन क्रियान्वयन हमेशा से धीमा रहा जिससे परिणाम भी ढुल–मुल सा ही रहा। शिक्षा में शामिल किए जाने वाले मुद्दों का व्याप इतना विस्तीर्ण रहा है कि उनके विश्लेषण, क्रियान्वयन और मूल्यांकन का काम हर सरकार और नियनता अपने–अपने ढंग से करता है। फिर प्रारम्भ होता है पुराने को कोसने तथा अपने मुहर के साथ कुछ नवीन घोषणा करने का खेल। नतीजा वही ढ़ाक के तीन पात। शिक्षा की गुणवत्ता से लेकर उसके समस्त संदर्भों और उपादेयता निर्धारण हेतु अब एक मात्र तरीका आजमाना शेष रह गया है, वह है संविधान संरक्षित पूर्ण स्वायत्त पूर्णकालिक 'शिक्षा नीति निर्धारण एवं क्रियान्वयन संस्थान' की स्थापना। इस संस्थान को आरंभ के साथ ही दो खण्डों में विभाजित करने की आवश्यकता होगी। प्रथम भाग के तहत नीति निर्धारण हेतु अनवरत शोध और सर्वेक्षण का कार्य होना चाहिए तथा दूसरे के तहत क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी नवीनतम शिक्षा और इलक्ट्रो–तकनीकों पर कार्य करने वाले देशव्यापी नेटवर्क का निमार्ण किया जाना चाहिए।

शिक्षा का माध्यम क्या हो, स्कूल सरकारी हो या गैर सरकारी, शिक्षकों के स्थानान्तरण, सेवा शर्तों सहित समस्त मुद्दे व्यापक परिप्रेक्ष्य में विशेषज्ञों की देखरेख में व्यापक बहस के साथ उभरनी चाहिए। प्रत्येक स्कूल–कॉलेज अपने आप में एक पूर्ण उत्तरदायी–स्वायत्त–साधन सम्पन्न और समग्र प्रतिनिधित्व मुक्त विद्यालय एवं कॉलेज संचालन समिति के नियंत्रण में चलें,

जहां कुछ पूर्णकालिक पदाधिकारी रहें। आजकल यह देखने में आ रहा है कि हर नए क्षेत्र और नई चुनौती के साथ पहला सुझाव, पहली मांग यही उठती है कि इस विषय विशेष को पाठयक्रम में सम्मिलित किया जाए। उदाहरण के लिए संस्कार युक्त शिक्षा के लिए नैतिक शिक्षा, लोकतंत्र के लिए मतदाता जागरुकता, उपभोक्ता जागरुकता, बिजली की बचत, ई लर्निंग, स्वच्छ भारत अभियान, फिल्म निर्माण, विधिक साक्षरता, आर्थिक साक्षरता, डिजिटल इण्डिया, डिफेन्स शिक्षा, मिलावट के विरुद्ध शुद्ध का युद्ध, सामाजिक विकृतियां जैसे दहेज, बहुविवाह, महिलाओं के विरुद्ध अपराध आदि। यह सूची इतनी बड़ी है कि यदि हम समस्त विषयों और क्षेत्रों की बात करें तो पाएंगे कि हम स्कूल–कॉलेजों में छात्र नहीं गोया कोई परिपूर्ण व्यक्तित्व तैयार करने की जुगत भिड़ा रहे हैं। इस गहमा–गहमी का नतीजा यह है कि हर कोई अपनी सामर्थ्य, शक्ति और पहुंच के अनुसार पाठ्यक्रमों में घुसपैठ करने की कोशिश कर रहा हैं। उदाहरण के तौर पर राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के माध्यमिक कक्षा के पाठयक्रम में प्रत्येक विषय में यातायात के नियमों का अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाना है। ज्ञात है कि यहां प्रत्येक विषय में यातायात पर 4 अक के प्रश्न सम्मिलित किए गए हैं।

इस प्रकार माध्यमिक परीक्षा के कुल 6 विषयों के 480 अंकों में से 24 अंक यातायात नियमों की जानकारी को समर्पित कर दिये गये हैं। विरोध इस बात का नहीं है कि विद्यार्थियों को यातायात नियमों को क्यों पढ़ाया जा रहा है, चिन्ता यह है कि आगे चलकर अन्य ऐसे अनेक विषय और क्षेत्र हैं जो पाठ्यक्रमों में घुसपैठ की जुगत लगाए बैठे हैं। तो क्या यह मान लें कि विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम का एक बड़ा हिस्सा सम–सामयिक समस्याओं को दे दिया जाएगा। दुर्घटनाओं की चिन्ता से ग्रस्त पुलिस प्रशासन के आग्रह पर यदि यातायात के नियम पढ़ाये जा सकते हैं तो फिर यौन अपराध की रोकथाम के कानून या फिर आतंकवाद निरोध कानून या फिर ब्लैकमेल रोकने के उपायों सहित हजारों विषय हैं, उन्हें भी सम्मिलित किए जाने का आग्रह होगा। कानून पढ़ाने और यातायात के नियम पढ़ाने के प्रभावों की समीक्षा तो बाद में सामने आयेगी। यह भी बाद में पता चलेगा कि सड़क दुर्घटनाओं में कितनी कमी आई है। लेकिन जो प्रत्यक्ष में दिखता है वह है स्कूल–कॉलेजों में छुट्टी के समय नाबालिग छात्र–छात्राओं का तेजी से दुपहिया वाहन दौड़ाना और वह भी बिना लाइसेन्स, बिना हेलमेट के। यह नजारा पूरे प्रदेश में ही नहीं लगभग समूचे देश में ही सामान्य है। यह ठीक ऐसी ही औपचारिकता है जैसे सिगरेट के पैकेट पर वैधानिक चेतावनी और शराब की बोतलों पर कानूनी नोटिस का दिया जाना । स्पष्ट है कि तात्कालिक प्रभावों के आंकलन मात्र से पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं होने चाहिए। पाठयक्रमों के निर्धारण के लिए एक समग्र नीति एवं समग्र मूल्यांकन अपेक्षित है।

माध्यमिक शिक्षा कार्यक्रम में अभी तक विद्यार्थियों के लिए कम्प्यूटर शिक्षा, नैतिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षा, कला शिक्षा जैसे नये–पुराने विषयों की न तो स्पष्टतः अध्यापन व्यवस्था है

और न ही मूल्यांकन की व्यवस्था। देश डिजिटलाइजेशन की ओर बढ़ना चाहता है। समय की मांग और व्यवस्था का आह्वान भी यही है, तो फिर कम्प्यूटर शिक्षा का विधिवत अध्यापन और पुख्ता मूल्यांकन व्यवस्था क्यों नहीं सम्भव हो पा रहा है? प्रदेश में वर्षों से कम्प्यूटर शिक्षा के नाम पर करोड़ों रुपये खर्च किए जा चुके हैं। यह घोर आश्चर्य की बात है कि यद्यपि स्कूल शिक्षा के साथ–साथ बी.एड़., एस.टी.सी. परीक्षा उतीर्ण शिक्षकों को कम्प्यूटर पढ़ना अनिवार्य होता है वाबजूद इसके किसी भी सरकारी अथवा गैर सरकारी स्कूल के बारे में जानकारी प्राप्त करने पर ज्ञात होता है कि वहां के नियमित शिक्षकों का कम्प्यूटर ज्ञान शून्य के बराबर है। इन विद्यालयों में कम्प्यूटर सिखाने के लिए पृथक से कम्प्यूटर शिक्षक की एक चलताऊ व्यवस्था की जाती है। ऐसे चलताऊ शिक्षक की रुचि बच्चों को सिखाने में कम सरकार में स्थाई रूप से घुसने की अधिक होती है।

उपरोक्त विश्लेषण तो शिक्षा जगत की समस्याओं की एक बानगी मात्र है। इन समस्याओं का यदि गहनता से अध्ययन किया जाए तो हजारों पन्ने भरे जा सकते हैं। पर इससे कोई खास फायदा नहीं होने वाला। हमारी प्रशासनिक व्यवस्था इतनी संवेदनहीन है कि समाचार पत्रों तथा इलेक्ट्रानिक मीडिया में चाहे कितनी ही सार्थक, रचनात्मक पहल गूंजे, सुझाव प्रस्तुत किए जाएं उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। इसके उलट वाहवाही लूटने, पुरस्कार जुटाने अथवा स्वयं को सर्वसिद्ध करने वाले प्रशासनिक अधिकारी यह मुगालता अवश्य पाल कर बैठे होते हैं कि वे महान शिक्षाविद्, बाल–किशोर मनोविज्ञान के ज्ञाता तथा ज्ञान के गणेश हैं।

शिक्षा जगत में आमूल चूल परिवर्तन की बात अब रिझाती कम और चिढ़ाती अधिक है। शिक्षा जगत की विद्रूपता की इससे भयावह तस्वीर क्या हो सकती है कि एक चुनावी सभा में प्रधानमंत्री द्वारा माध्यमिक परीक्षा केन्द्रों पर हो रहे नकल और इसे कराने वालों के छूटने का जिक्र करना पड़े। यह निश्चय ही शर्मनाक बात है। लेकिन किसी को कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। मार्च में देश भर में फिर परीक्षाएं होंगी, फिर वही नजारें, वही तस्वीरें और वही खबरें देखने को मिलेगीं। परीक्षा परिणामों के बाद शुरु होगा शिक्षकों को चेतावनी देने का सिलसिला और असफलता से हताश होने वाले बच्चों की आत्महत्या के समाचारों की भरमार। कई बार तो लगता है हम साल दर साल वही अखबार, वही समाचार पढ़ रहे हैं, बस तारीखें बदल–बदल कर।

राजनैतिक दलों की इच्छा शक्ति में शिक्षा का स्थान मात्र प्रतीकात्मक आभूषणों जैसा है। शिक्षा को बढ़ावा देने के नाम पर मात्र चुनाव घोषणा पत्रों में साईकिल, लैपटॉप, स्मार्टफोन, स्कॉलरशिप और अब घी–तेल मुफ्त वितरण के टोटके अपनाए जाते हैं। कहीं कोई गंभीर प्रयास नहीं किया जाता। समवर्ती सूची में सम्मिलित शिक्षा जैसा विषय केन्द्र और राज्यों के

बीच शटल कॉक बनकर रह जाता है। तथाकथित वैचारिक स्तर पर केन्द्रीय सत्ता परिवर्तन के पश्चात पहली मार शिक्षा पर ही पड़ती दिखती है। नतीजा शैक्षिक गतिशीलता के विखण्डन के रुप में सामने आता है। और फिर से शुरु हो जाता है नया गढ़ने का दुराग्रहपूर्ण आग्रह तथा पूर्ववर्ती को हटाने की जिद। नया बनाने और परोसने में सारा समय व्यतीत हुआ जाता है। फलस्वरुप न पुराना बचा रह पाता है और न ही नया पनपता है। इन दुविधा से मुक्ति, निरन्तरता और गतिशीलता के लिए, देश के गौरव, मान और आधुनिकता की पुख्ता संस्थापना हेतु पुरजोर ढंग से 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्धारण और क्रियान्वयन संस्थान' का तत्काल गठन किया जाना चाहिए। इसकी स्वायत्तता चुनाव आयोग या महालेखा परीक्षक जैसी ही होनी चाहिए तथा स्पष्टरुप से इसे भारतीय प्रशासनिक सेवा और राज्य प्रशासनिक सेवाओं के चुंगल से मुक्त रखा जाना चाहिए। ऐसा होने पर यह उम्मीद किया जा सकता है कि आने वाले वर्षों में शिक्षा अवहेलना का शिकार नहीं होगी तथा सरकारी, गैरसरकारी एवं स्वयंसेवी संस्थाएं एक जुट होकर कार्य करते हुए शिक्षा को न केवल गुणवत्तापूर्ण बनाएगी बल्कि इसकी पहुंच देश के सभी नागरिकों तक हो सकें यह भी सुनिश्चित करेंगी। इस प्रकार के संस्थान के लिए आवश्यक मानव संसाधन का राष्ट्रीय स्तर और राज्य स्तर पर स्वतंत्र चयन होना चाहिए तथा इसे केवल संसद के प्रति ही उत्तरदायी होना चाहिए।

उत्कृष्ठता वो कला है जो प्रशिक्षण और आदत से आती है। हम इसलिए सही कार्य नहीं करते कि हमारे अन्दर अच्छाई या उत्कृष्ठता है, बल्कि वो हमारे अन्दर इसलिए है क्योंकि हमने सही कार्य किया है। हम वो हैं जो हम बार–बार करते हैं। इसलिए उत्कृष्टता कोई कार्य नहीं बल्कि एक आदत है।

– अरस्तु

मैं भारतीय हूं और हर भारतीय मेरा भाई है। अज्ञानी हो या फिर गरीब हो, अभावग्रस्त हो या ब्राह्मण या फिर अछूत हो, वो मेरा भाई है। भारत का समाज मेरे बचपन का पालना है और मेरे जवानी के आनंद का बगीचा है। मेरे बुढ़ापे की काशी है। भारत की मिटटी मेरे लिए सबसे बड़ा स्वर्ग है।

–स्वामी विवेकानंद

अपना शौचालय बनवाना है

— बद्री प्रसाद वर्मा अनजान

सोच समझ कर घर–घर में
अपना शौचालय बनवाओ।
स्वच्छता की गांव–गांव में
मिल कर दीप जलाओ।।

खुले शौच में अब
घर की बहू बेटियां ना जाएंगी।
गांव–गांव के घर–घर में
सुलभ शौचालय बनवाएंगी।।

इस मुहिम से अब
सबको जुड़ना होगा।
अपने घर में भी
एक शौचालय बनवाना होगा।।

गांव–गांव में भारत के
शौचालय बन जाएंगे।
तो भारत देश हमारा
गंदगी से मुक्त हो जाएगा।।

खुले में अब शौच
करने नहीं जाना है।
सुलभ शौचालय की मुहिम के सहयोग से
हर घर में शौचालय बनवाना है।।

पितृसत्ता का समापन

(30 नवम्बर 2016 को नई दिल्ली में भारत के माननीय उपराष्ट्रपति श्री मोहम्मद हामिद अंसारी ने 22 वां न्यायमूर्ति सुन्नदा भण्डारे स्मृति व्याख्यान प्रदान करते हुए भारतीय समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए पैट्रिआर्की अर्थात पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण के समापन की वकालत की। सार्वभौमिक विकास तथा महिला सशक्तीकरण के क्षेत्र में कार्यरत सभी के लिए यह भाषण पाथेय हो सकता है। प्रस्तुत है इस भाषण का लिखित कलेवर।)

न्यायाधीश सुनन्दा भण्डारे को स्त्री–पुरूष समानता के संबंध में लम्बे समय से किए जा रहे प्रयास और उस दिशा में अब तक अपूर्ण तलाश के अग्रदूत के रूप में स्मरण किया जाता है। 21वीं सदीं के दूसरे दशक में यह बात अजीब लग सकती है, क्योंकि भारत का संविधान और स्त्री–पुरूष समानता संबंधी इसके उपबंध 1950 से ही लागू हैं तथा इन्हें राष्ट्रीय विधानों और उन बहुत सारे अंतर्राष्ट्रीय संधियों के माध्यम से परिपूरित किया गया है जिन्हें भारत और अधिकतर अन्य राष्ट्रों द्वारा स्वीकार किया गया है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के स्त्री–पुरूष असमानता सूचकांक में इसकी निराशाजनक स्थिति परिलक्षित होती है जिसमें वर्ष 2014 में कुल 188 देशों में भारत 127वें स्थान पर था।

मैं आप सभी सम्मानित श्रोताओं को यह बताना चाहूंगा कि इस स्पष्ट विडम्बना के पीछे जो कारण है उनका संबंध विधान और नियमों के क्षेत्र में कम और मानव मूल्यों एवं व्यवहार से संबंधित सामाजिक धारणाओं में अंतर्निहित, अघोषित या आंशिक प्रमुख रीति–रिवाजों के साथ कहीं अधिक है, क्योंकि इसका विकास अनेक सहस्त्राब्दियों के दौरान हुआ है। इसका संबंध पितृसत्ता की अवधारणा से है जिसे गेर्डा लर्नर ने अपने मौलिक अध्ययन में परिभाषित करते हुए कहा है कि 'यह परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरूषों की प्रत्यक्ष प्रधानता को संस्थागत रूप दिया जाना तथा सामान्य रूप से समाज में महिलाओं पर पुरूष प्रधानता का विस्तार किया जाना है। इसका तात्पर्य है कि समाज की सभी महत्वपूर्ण संस्थाओं में सत्ता पुरूषों के पास होती है और महिलाओं को इस सत्ता तक नहीं पंहुचने दिया जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि महिलाओं को बिलकुल भी शक्ति प्राप्त नहीं है या वे अधिकारों, प्रभाव या संसाधनों से पूर्णत वंचित है।'

उनका तर्क है कि यह लिखित इतिहास से भी पहले की बात है और इसकी शुरूआत ईसा से तीन सहस्त्रब्दि पूर्व हुई थी।

इस विषय पर सिल्विया वाल्बी द्वारा किए गए एक अन्य अध्ययन में पितृसत्ता को इस तरह से परिभाषित किया गया है कि 'यह सामाजिक संरचना और परिपाटियों की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें महिलाओं पर पुरूषों का प्रभुत्व होता है और वे उनका दमन और शोषण करते हैं। वे आगे कहती हैं कि इसके परिणामस्वरूप जो विचारधारा बनती है उसमें 'लिंग के आधार पर व्यक्तिपरकता के भिन्न–भिन्न स्वरूपों' का जन्म होता है।'

अन्य लोगों ने पितृसत्ता को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह 'ऐसी विशिष्ट मनौवैज्ञानिक–समाजशास्त्रीय संपूर्णता है जो सामाजिक और मनौवैज्ञानिक संरचना में हमेशा दिखाई देती है।'

दूसरे शब्दों में, यह लम्बे समय से चली आ रही ऐसी व्यवस्था है जिसमें बहुत से लोग शामिल हो जाते हैं और वे उनमें से अधिकत्तर–अनजाने ही इस व्यवस्था में भागीदारी बन जाते हैं। यह प्रक्रिया के साथ–साथ उत्पाद भी है।

समकालीन बहसों में एक अस्पष्ट विरोधी मत के रूप में पितृसत्ता को परिभाषित करते हुए कहा जाता है कि यह 'एक ऐसी आलंकारिक युक्ति है जो आधी मानव जाति अर्थात् पुरूषों पर सामूहिक अपराधबोध की भावना को थोपना आसान बनाकर स्त्रीवादी विचारधारा को संबल प्रदान करती है।'

हमारे अपने देश में, प्राचीनतम समय, जबसे संबंधित लिखित ग्रंथ उपलब्ध हैं, से ही पितृसत्ता एक जीवंत वास्तविकता रही है। एक अध्ययन में वैदिक और वैदिकोत्तर काल में इस स्थिति का सार प्रस्तुत करते हुए कहा गया है:

'वैदिक युग में, महिलाएं अपने भाइयों के बराबर थीं। यही स्थिति वैदिक युग में अंतिम दिनों और महाकव्य काल और यहां तक कि बौद्धों के धर्मवैधानिक साहित्य की रचना किए जाने के समय तक भी बनी रही। परंतु उसके पश्चात् अनुवर्ती काल के असामयिक जन आन्दोलनों तथा राजभक्ति के दुष्प्रभावों के साथ–साथ उसकी असामाजिक प्रवृतियों के कारण एक प्रतिक्रिया हुई जिसने सामाजिक अस्तित्व या दाम्पत्य जीवन की शांति और आनन्द की नींव को लगभग हिला ही दिया था।

'इस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप महिलाओं की आजादी और इससे उत्पन्न परिणामों की बुराइयों का सतत रूप से राग अलापा जाने लगा। महिलाओं को बौद्धिक क्षमता की दृष्टि से स्वाभाविक रूप से हीन माना जाने लगा और यह भी माना जाने लगा कि वे किसी भी बुराई की ओर सहजता से झुक सकती हैं। अतः उन्हें संरक्षण में रखने के लिए कानून बनाए गए और उन्होंने अपने बहुत से अधिकार खो दिए।'

इसका दृष्टांत देने वाली एक पुस्तक है कॉटिल्य की अर्थशास्त्र, जिसमें कतिपय कानूनी मामलों में स्त्री की हैसियत दास अथवा बंधुआ मजदूर के बराबर मानी गई है। इस विद्धान के आकलन के अनुसार 'समग्र तस्वीर इस तरह की है कि महिलाओं को मातहत की भूमिका में रखा जाता था परंतु यह सुनिश्चित करने के लिए उनको पर्याप्त संरक्षण दिया जाता था कि इसके कारण उनका पूरी तरह से शोषण न हो। इन रक्षोपायों ने व्यवहार में कितना कुछ किया होगा इसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। इसकी संभावना है कि सदियां गुजर जाने के बाद अर्थशास्त्र में महिलाओं को दी गई कानूनी संरक्षण की गारंटी में क्रमिक क्षरण के परिणामस्वरूप उन्हें मनुस्मृति जैसी उत्तरकालीन संहिताओं में निम्न दर्जा दिया जाने लगा। आप में से बहुत से श्रोताओं को इसका ब्यौरा अच्छी तरह से पता होगा। विभिन्न युगों में उन्हें परिष्कृत करने अथवा उनकी अनुकूल व्याख्या करने के प्रयास किए गए हैं। एक समकालीन लेखक ने कुछ उदारतापूर्वक अपनी राय देते हुए कहा है कि मनु ने महिलाओं का जो निरूपण किया है उसे गरिमापूर्ण नहीं कहा जा सकता। कोई वास्तव में यह नहीं कह सकता कि मनु पूर्णतः महिलाओं के विरूद्ध थे। वह केवल समकालीन समाज की प्रबल प्रवृतियों के सामने झुक गए और संभवत उनका विरोध नहीं कर सके।'

इस प्रक्रिया में 'जान–बूझकर या अनजाने, जिस बात की अनदेखी हुई, वह थी, उस सामाजिक ढ़ांचे की समग्रता जिसमें ये निर्देश दिए गए थे। यह एकतरफा और जाति आधारित और आज भी कमोबेश तीव्रता के साथ उसी रूप में बना हुआ है। 20वीं सदी में इसकी प्रतिक्रिया अंबेडकर द्वारा 1927 में मनुस्मृति की पुस्तक को सार्वजनिक रूप से जलाए जाने के प्रतीक के रूप में हुई।

प्राचीन पाण्डुलिपि और परिपाटी सिक्के का एक पहलू है, ज्यादा गंभीर और व्यापाक है अवचेतन मन में बसी हुई पितृसत्तात्मक सोच। एक ऐसी सोच जिससे प्रायः रोजमर्रा के जीवन में सामना होता है और जिसकी अभिव्यक्ति शब्दों और भावों के माध्यम से एक व्यक्ति की शब्दावली और अधिकांश भागों में सामाजिक परिपाटियों में होती है। शब्दावली पर प्रभाव के कुछ दृष्टांतों का कमला भसीने ने अपने निबन्ध में उल्लेख किया था। अन्य भाषाओं में भी इसी तरह की भावाभिव्यक्ति मौजूद हैं।

क्या हाल के वर्षों में हमारे समाज के बड़े भागों में इस स्थिति में कोई मूलभूत और गुणात्मक परिवर्तन हुआ है? एक हाल के आकलन से पता चलता है कि:

'भारत के अधिकांश भागों में पितृसत्तात्मक समाजों के पूर्वाग्रह और कट्टरता ने लड़कों के लिए एक अनिवार्य वरीयता और लड़कियों के विरूद्ध भेदभाव का रूप ले लिया है। उन्होंने कन्या भ्रूण हत्या, दहेज, दहेज के लिए दुल्हन को जलाया जाना और सती जैसी कुरीतियों को भी जन्म दिया है जिसके चलते लड़कियों के लिए पोषण, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और

रोजगार की उपेक्षा की जाती है। महिलाओं के पास निर्णय लेने की सीमित स्वायत्तता होने के कारण उनके काम को सामाजिक रूप से भी कम महत्व दिया जाता है। जाति, वर्ग और लिंग के बंधनों के कारण स्थिति और भी बदतर हो गई है। सामाजिक निर्माण के कार्य के बावजूद पितृसत्तात्मक संस्कृति जिसे देश के प्रमुख धर्मों द्वारा बढ़ावा दिया गया है, लिंग असमानता को बनाए रखने में अपना शिंकजा कसी हुई हैं। प्रचलित पितृसत्तात्मक व्यवस्था महिलाओं के लिए न्याय को प्राप्त करने के वैकल्पिक दृष्टिकोणों की चर्चा करने पर वैचारिक रोक लगाती हैं।'

आज के भारत में इस स्थिति का और अधिकार पूर्ण आकलन हाल के सरकारी दस्तावेजों में प्रदर्शित स्थिति को ध्यान में रखते हुए शुरू किए जाने की जरूरत है। मई, 2013 में भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने भारत के राष्ट्रपति द्वारा गाठित राज्यपालों की समिति की सिफारिश के आधार पर महिलाओं की स्थिति के संबंध में एक उच्च–स्तरीय समिति गठित की थी। समिति का 1008 पृष्ठों का प्रतिवेदन जो तीन भागों में हैं, जून 2015 में प्रस्तुत किया गया। इसके निष्कर्षों में निम्नलिखित बिन्दुओं को उजागर किया गया हैः

2015 में महिलाओं के लिए सामजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य पुरातन और नवीन का जटिल मिश्रण है। औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, शहरीकरण और आधुनिकीकरण से महिलाओं के लिए कुछ सकारात्मक और कुछ जटिल परिवर्तन आए हैं। प्रवास, लिंग अनुपात में कमी और पर्यावरण प्रदूषण के कारण महिलाओं की स्थिति और कमजोर हुई है।

भारत में महिलाओं की यह विरोधाभासी स्थिति चिंताजनक है। एक ओर जहां उनकी देवियों के रूप में पूजा की जाती है, वहीं दूसरी ओर उन्हें दहेज के लिए जलाया भी जाता है। समाज में लड़कों की चाहत ज्यादा है। लड़कियों को अनचाहा बोझ समझा जाता है; वे चुपचाप पीड़ा सहती रहती हैं और उन्हें दुर्व्यव्हार, हिंसा, बलात्कार और बाल विवाह जैसी कुरीतियों का शिकार होना पड़ता है। जब कभी वे अपनी चुप्पी तोड़ती हैं तो उसके भंयकर परिणाम सामने आते हैं। भेदभावपूर्ण प्रथाएं जैसे कि लिंग आधारित लिंग चयन, बाल विवाह, दहेज, झूठी शान के लिए मारा जाना और सामाजिक दृष्टि से उन्हें प्रताड़ित किया जाना समाज में उनकी कमजोर स्थिति के द्योतक हैं।

सरकार ने इन विरोधभासों को माना है और नीतियों, विधान और कार्यक्रमों के जरिये उन्हें दूर करने का प्रयास किया है। इन उपायों के मिले–जुले परिणाम मिले हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक रीति–रिवाजों के कारण कानूनी बदलावों को लागू किए जाने में विरोध का सामना करना पड़ा है।

यद्यपि सरकार के लगभग 30 विभागों में महिला–विशिष्ट और महिला हितैषी आवंटन किए जाते हैं लेकिन ये सभी आवंटन कुल बजट का महज 5.8 प्रतिशत हिस्सा ही हैं।

यदि श्रमिक बल की भागीदारी की बात की जाए तो 2015 में इस संबंध में भारत में विश्व की सर्वाधिक लिंग असमानता पायी गई। केवल 25 प्रतिशत महिलाएं ही कामकाजी हैं, आधे प्रतिशत से भी कम महिलाएं काम की तलाश कर रही हैं। गांवों और शहरों में कार्यों के अवसरों में 'अनौपचारिककरण' और 'नियमित श्रमिकों की अल्पकालिक पुनर्नियुक्ति' के मामले बढ़ रहे हैं। पिछले दशक के दौरान कार्यस्थल पर महिलाओं की संख्या में नियमित रूप से कमी आयी है। आईएमएफ के एक अध्ययन में अनुमान लगाया गया है कि यदि महिला कामगारों की संख्या पुरूष कामगारों के समान हो जाए तो भारत की जीडीपी में 27 प्रतिशत की वृद्धि होगी।

प्रतिवेदन में समुक्ति की गई है कि इन बाधाओं के बावजूद आगे बढ़ने वाली महिलाओं की संख्या बहुत कम है और इसके विश्लेषण से पता चलता है कि 'परिवर्तन अत्यधिक धीमा है और स्पष्ट निर्देश के अभाव में अनिश्चित और निराशाजनक बना हुआ है और यह कि 'व्यापक कार्यक्रम में अलग–अलग जाति, वर्ग, आयु और जीवन अवस्था/स्थितियों और अन्य विविधताओं के आधार पर महिलाओं की जरूरतों और आकांक्षाओं की पहचान करने और उन्हें पूरा करने की क्षमता होनी चाहिए। ये कार्यक्रम टुकड़ों में होने के बजाए संपूर्ण होने चाहिए और इनमें यौन और प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य सहित स्वास्थ्य समय जरूरतों, साक्षरता, शिक्षा, सुरक्षा और हिंसा रहित कार्यस्थल, व्यक्तिगत और राजनैतिक विकास हेतु आकांक्षाओं की पूर्ति और आर्थिक सशक्तीकरण के उपाय शामिल होने चाहिए।

प्रतिवेदन में यह स्वीकार किया गया है कि 'अन्य बातों के साथ–साथ परिवार, जाति, समुदायों और धर्म के माध्यम से पितृसत्तात्मक मूल्यों और विचारों को निरंतर सुदृढ़ किया जाता है और वैध बनाया जाता है।'

प्रतिवेदन में उल्लेख किया गया है कि प्रगतिशील पहलों के साथ–साथ उन संस्थाओं की संस्कृति में आनुशांगिक परिवर्तन नहीं किए जाते हैं जिन पर इन पहलों को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व है और यह कि सशक्तीकरण की प्रक्रिया उन संस्थाओं तक पहुंचनी चाहिए जो व्यापाक परिवर्तन की कुंजी धारण करते हैं जिनमें धर्म, परिवार, विवाह, शैक्षणिक संस्थाएं, कानून और व्यवस्था, न्यायपालिका तथा मीडिया शामिल हैं।'

प्रतिवेदन में इसका उल्लेख तो है परन्तु इसमें ऐसी कार्य स्थिति के मूल कारणों का विशिष्ट रूप से समाधान नहीं किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें 'संस्थाओं की

संस्कृति' स्थापित करने तथा विस्तृत समुदाय के विभिन्न भागों में संस्कृति और प्रथाओं पर आधारित सामाजिक परम्पराओं का सूत्रपात करने के तरीकों के बारे में कोई सुझाव नहीं दिया गया है।

3 मार्च, 2016 को राज्य सभा में इस प्रतिवेदन पर पूछे गए प्रश्न का उत्तर महिला एवं बाल विकास मंत्री द्वारा दिया गया था। इसमें सामान्य शीर्षों के अंतगर्त सिफारिशों का सार प्रस्तुत किया गया था किन्तु इसमें घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा संबंधी विद्यमान कानून तथा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 2005 की कतिपय विशेषताओं पर ध्यान आकर्षित किए जाने के अलावा सरकार द्वारा प्रस्तावित कार्यप्रणाली का कोई संकेत नहीं दिया गया था।

मई, 2016 में, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने ''राष्ट्रीय महिला नीतिः सशक्तीकरण हेतु सुस्पष्ट दृष्टिकोण'' के मसौदे को अपनी वेबसाइट पर डाल दिया। यह इस बात पर बल देता है कि तेजी से बदलते हुए परिदृश्य में 'महिलाओं के बारे में ऐसी दृढ़ सांस्कृतिक एवं सामजिक धारणा रखने वाले समाज में महिलाओं के लिए जटिल सामजिक–आर्थिक तथा सांस्कृतिक चुनौतियां सामने आ रही हैं कि देश में यह अनुभव किया जा रहा है कि अनवरत विकास में महिलाओं को अंततः एक समान सहभागी के रूप में सम्मान देने के लिए अभी काफी कुछ किया जाना बाकी है। इसका उद्देश्य 'एक प्रभावी रूपरेखा' तथा अनुकूल सामजिक–सांस्कृतिक–आर्थिक तथा राजनैतिक वातावरण तैयार करना है जिसमें महिलाएं अपने पूर्ण सामर्थ्य को वास्तविक रूप प्रदान करने के लिए कानून तथा हकीकत में मूल अधिकारों का उपयोग कर सकें।'

इस दस्तावेज में पितृतन्त्र शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है।

21 जुलाई, 2016 को राज्य सभा में एक अन्य प्रश्न के दिए गए उत्तर में मंत्री ने कहा कि वियुक्त/तलाकशुदा/विधवा/महिलाओं की स्थिति के बारे में उच्च स्तरीय समिति की कतिपय सिफारिशों को प्रारूप राष्ट्रीय नीतियों में उचित रूप से शामिल किया गया है। 2 फरवरी तथा 18 नवम्बर, 2016 को लोक सभा में भी राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति, 2002 के संबंध में दो प्रश्नों के उत्तर दिए गए थे। इसमें 2001 से अधिनियमित विधानों का ब्यौरा दिया गया था और दूसरे प्रश्न के उत्तर में यह उल्लेख किया गया था कि आज काफी संख्या में महिलाएं कानून का सहारा लेकर अपनी पसंद के अनुसार जीवनयापन कर रही हैं क्योंकि सशक्तीकरण पूर्णतः पसंद से संबंधित है।

प्रारूप राष्ट्रीय नीति के अनुसार नीति संबंधी रूपरेखा में स्वास्थ्य और पोषण, शिक्षा, गरीबी उपशमन, उन्नत अक्षमता, कौशल विकास के प्रमुख क्षेत्रों के संघटक तथा कृषि उद्योग, श्रम, सेवा क्षेत्रों, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, शासन व्यवस्था तथा निर्णय लेने में उद्यमिता शामिल होगी। यह महिलाओं के प्रति होने वाली सभी प्रकार की हिंसाओं का भी समाधान करेगा तथा इसके

अलावा आवास तथा शरणस्थल, पेयजल तथा स्वचछता, मीडिया, खेलकूद, सामजिक सुरक्षा, अवसंरचना, पर्यावरण तथा जलवायु परिवर्तन से संबंधित अनुकूल वातावरण तैयार करेगा। इसे महिलाओं के लिए उचित तथा समावेशी एवं न्यायसंगत हक सुनिश्चित करने के लिए संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार व्यक्तिगत तथा प्रथागत रूप से समीक्षा करनी होगी। इसके अलावा राष्ट्रीय, राज्य तथा स्थानीय सरकार के स्तर पर और सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों, कारपोरेटों, व्यापारों, मजदूर संघों, गैर सरकारी संगठनों तथा समुदाय आधारित संगठनों में कार्यान्वयन के लिए विशिष्ट, पूरा किए जाने योग्य तथा प्रभावी रणनीतियां अपनानी होंगी। अन्तर मंत्रालयी समिति द्वारा एक अन्तर मंत्रालयी कार्य योजना विकसित की जाएगी और उसकी निगरानी की जाएगी।

अस्पष्ट कारणों से प्रारूप राष्ट्रीय नीति में पाम राजपूत रिपोर्ट को विशिष्ट रूप से उल्लिखित नहीं किया गया है। अतः पाठक इन दोनों के सम्मिलन या अन्यथा क्षेत्रों के बारे में अंधेरे में है। फिर भी कहा जा सकता है कि प्रारूप राष्ट्रीय नीति में कुछ हद तक पाम राजपूत रिर्पोट का अंतिम पैरा प्रतिबिम्बित होता है जिसमें आग्रह किया गया है कि सभी पणधारक स्त्री–पुरूष भेदभाव को समाप्त करते हुए समानता के साथ इस व्यापक सशक्तीकरण का माहौल तैयार करने के कार्य को पूर्णतः गंभीरता और प्रतिबद्धता के साथ आगे बढ़ाएं।

अतः यह स्थिति है, जो हाल के आधिकारिक दस्तावेजों में परिलक्षित होती है। पहले में पितृतंत्र की मौजूदगी तथा उसकी व्यापकता का संदर्भ है, तो दूसरा इसकी ओर गोल–मोल तरीके से इंगित करता है। दोनों ही विभिन्न प्रकार के सुधारों का सुझाव देते हैं जो कि क्रांतिकारी के बजाए वृद्धिकारी है, बाध्य करने के बजाए समझाने की आवश्यकता वाली राय और व्यवहार पर आधारित है जिसमें कि महिलाओं को बड़े पैमाने पर सार्वजनिक जीवन और अर्थव्यवस्था, विशेषतः ऐसे क्षेत्रों में जिनमें उन्हें अभी तक अपात्र समझा जाता था, के एक सक्रिय घटक के रूप मे शामिल करके बदलते हुए वातावरण में स्वीकार किया जा सके।

सशक्तीकरण पर जोर, और वृद्धिकारी दृष्टिकोण समानता के बजाए साम्यता का द्योतक हैं। अतः यह सार अपरिहार्य है कि चाहे पितृसत्ता समाप्त करने की प्रक्रिया शुरू की जा चुकी हो परन्तु अभी भी इसका परिणाम सामने आना बाकी है।

अतः उपलब्ध साक्ष्य से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पितृतंत्र अभी समाप्त नहीं हुआ है और यह कि सरकार तथा समाज द्वारा किए जा रहे वर्तमान उपाय का मुख्य उद्देश्य वास्तविक समानता के बजाए विभिन्न स्तर की साम्यता लाना है।

इस प्रकार, पितृसत्तात्मक व्यवस्था से समानता की ओर बढ़ने की चुनौती अनिवार्य है। इसके बिना स्त्री–पुरूष समानता को बनाए रखने पर प्रश्न चिन्ह लगा रहेगा।

शिक्षा एवं साक्षरता दर में विकास केवल प्रौढ़ शिक्षा से सम्भव

–जसीम मोहम्मद

सन् 1947 में आजादी के बाद भारतीय संविधान ने देश के सभी नागरिकों को बराबरी का दर्जा प्रदान किया। यदि यह सवाल पूछा जाए कि समानता के इस संवैधानिक दर्जा के साथ एक लम्बी सफर तैय करने के बावजूद क्या देश में समतामूलक समाज विकसित हो सका है? तो उत्तर नहीं में मिलता है। भारत एक विशाल और विविधताओं से भरा हुआ देश है। यहां विभिन्न धर्मों, संस्कृति और भाषाओं को बोलने वाले लोग रहते हैं। आर्थिक विषमताएं भी यहां समाज के सभी स्तरों पर व्यापकरुप से विद्यमान रही हैं। इन सबके बीच विकास का रास्ता तलाश करना कभी भी आसान नहीं रहा। स्वतन्त्रता के पश्चात जब हम अपने देश के नव–निर्माण की दिशा में आगे बढ़े तो विविधताओं एवं विषमताओं के साथ–साथ अशिक्षा भी हमारे रास्ते में एक बड़ी रूकावट बनकर उभरी। ज्ञात है कि स्वाधीनता के समय भारत की औसत साक्षरता दर तकरीबन 18.33 प्रतिशत थी जिनमें पुरुष साक्षरता दर 27.16 प्रतिशत और महिला साक्षरता दर महज 8.86 प्रतिशत थी। आजादी के बाद से ही भारत सरकार ने देश भर में व्याप्त असाक्षरता को समाप्त करने के लिए जमीनी स्तर पर सुनियोजित संघर्ष प्रारम्भ किया। इसके परिणामस्वरुप देश ने विकास के नए अयाम कायम किए परन्तु अभी भी हमारे देश में अशिक्षा बड़े पैमाने पर व्याप्त है।

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता दर 73 प्रतिशत है जिसमें पुरुष साक्षरता दर 80.9 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 64.6 है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता दर 64.8 प्रतिशत थी जिसमें पुरुष साक्षरता दर 75.3 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 53.7 थी। इस प्रकार देखा जाए तो पिछले एक दसक में देश में पुरूषों की साक्षरता दर में 5.6 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है जबकि महिलाओं की साक्षरता दर में बढ़ोतरी का प्रतिशत 10.9 है। स्पष्ट है कि साक्षरता के क्षेत्र में लम्बी छलांग लगाने के बाद भी देश पूर्ण साक्षरता के लक्ष्य से अभी भी बहुत पीछे है। यह सभी जानते हैं कि कोई भी देश बिना शिक्षित समाज के विकास की राह पर आगे नहीं बढ़ सकता है। ऐसे में हमारे देश में भी एक विशाल आबादी की प्रगति के सामने प्रश्न चिन्ह खड़ा हो जाता है।

असाक्षर आबादी के साथ एक बड़ी समस्या यह है कि वे सरकार द्वारा उनके ही फायदे के लिए संचालित योजनाओं एवं कार्यक्रमों का लाभ नहीं उठा पाते और साक्षर समाज से उलट लगातार पिछड़ते चले जाते हैं। विशेषज्ञ इस तथ्य पर एकमत है कि बिना साक्षर बनाए असाक्षरों का कल्याण नहीं हो सकता क्योंकि असाक्षर व्यक्ति स्वयं से आगे बढ़ अपने विकास का मार्ग न देख पाता है और ना ही उस पर चलकर आगे बढ़ पाता है। इसलिए कहते हैं

कि विकास के सभी रास्ते साक्षरता से होकर गुजरते हैं। यदि जल्दी से साक्षरता और असाक्षरता के बीच के अन्तराल को पाटा न गया तो यह खाई दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाएगी। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि हम अपने देश में साक्षरता दर को हर हाल में बढ़ाएं। परन्तु सवाल यह है कि साक्षरता दर बढ़ाने के लिए पद्धति कौन सी अपनाई जाए। निश्चित ही यह पद्धति देश के शिक्षा बजट को ध्यान में रखकर तैय की जानी चाहिए ताकि इतने विशाल देश की आवश्कताओं को पूरा किया सके।

इस दिशा में प्रौढ़ शिक्षा ने अब तक एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है और आगे भी इसकी प्रासंगिकता बनी रहने वाली है। प्रौढ़ शिक्षा के तहत कार्यरत संस्थाएं देश की शेष असाक्षर आबादी को साक्षर बना उन्हें मुख्य घारा में शामिल करने का कार्य यह बखूबी निभा सकती हैं। प्रौढ़ शिक्षा के द्वारा देश के उस वर्ग को सहजता से शिक्षित किया जा सकता है जो या तो आरम्भ ही से अशिक्षित रह गया अथवा जिसे मजबूरन अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के तहत न केवल प्रौढ़ महिला एवं पुरुष को बुनियादी शिक्षा प्रदान की जाती है बल्कि विभिन्न केन्द्रों पर कौशल विकास के विविध आयामों का समावेश कर उन्हें जीवनयापन के लिए उपयुक्त माध्यम तलाश करने हेतु हुनर भी प्रदान किया जाता है। यह भरसक प्रयास किया जाता है कि प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों तक नियमित आने वाले व्यस्क महिलाओं एवं पुरुषों में प्रर्यावरण, नागरिक अधिकारों, स्वच्छता एवं स्वास्थ, लैंगिक समानता, विधिक साक्षरता के बारे में प्यार्प्त जागरुकता उत्पन्न किया जा सके। ताकि ये शिक्षार्थी समाज के अन्य साक्षर लोगों की भांति अपने दैनंदिन कार्य एवं दायित्तवों का सुगमतापूर्वक निर्वहन कर सकें।

सार्वभौमिक साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में प्रौढ़ शिक्षा की उपादेयता के मद्देनजर केन्द्र सरकार प्रौढ़ शिक्षा के प्रचार–प्रसार एवं किग्रावयन के लिए सदैव गम्भीर रही है तथा समय–समय पर इस हेतु नए कार्यक्रमों का संचालन भी करती रही है। पहली पंचवर्षीय योजना से ही देश में प्रौढ़ शिक्षा को बढ़ा देने के लिए विभिन्न कार्यक्रम लागू किए गए जिनमें राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय साक्षरता मिशन कार्यक्रम अत्यन्त ही उल्लेखनीय एवं प्रभावी रहे। सन् 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन प्राधिकरण की स्थापना हुई तथा समूचे देश में एक साथ और मिशन मोड में राष्ट्रीय साक्षरता कार्यक्रम का संचालन किया गया। प्रत्येक जिले के जिला कलेक्टर ने अपने–अपने जिले में इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन को नेतृत्व प्रदान किया। कार्यक्रम का उद्देश्य तीन चरणों यथा पूर्ण साक्षरता अभियान, उत्तर साक्षरता अभियान तथा सतत् शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से 15 से 35 वर्ष के आयु तक के लोगों को बुनियादी शिक्षा प्रदान करना था।

यह कार्यक्रम व्यापक उपलब्धि वाला कार्यक्रम साबित हुआ। दसवीं पंचवर्षीय योजना की समाप्ति के समय तक राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के तहत लगभग 13 करोड़ लोगों को बुनियादि

साक्षरता प्रदान की गई जिसमें 60 प्रतिशत महिलाएं, 23 प्रतिशत अनसूचित जाति और 12 प्रतिशत अनुसचित जन–जाति शामिल थे। कार्यक्रम कुल 597 जिलों में संचालित किया गया जिनमें से 502 जिले उत्तर साक्षरता तथा 328 जिले सतत् शिक्षा के स्तर तक पहुंचने में कामयाब रहे। असाक्षरता से संधर्ष कर रहे देश के लिए यह निश्चित ही बहुत बड़ी उपलब्धि थी। लेकिन सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश में पुरुष साक्षरता दर जहां 75.26 प्रतिशत तक पहुंच गई वहीं महिला साक्षरता दर मात्र 53.67 प्रतिशत तक ही पहुंच सकी। तातर्प्य यह कि एक लम्बी छलांग के बावजूद महिला असाक्षरता और क्षेत्रिय असामनता से मुक्ति नहीं मिल सकी।

साक्षरता के क्षेत्र में लैंगिक असमानता को दूर करने के विशिष्ट उदेश्य के साथ भारत सरकार ने सन 2009 में साक्षर भारत कार्यक्रम प्रारम्भ किया। कार्यक्रम का सामान्य उदेश्य देश के औसत साक्षरता दर को 80 प्रतिशत तक ले जाना तथा जेंडर गैप को 10 प्रतिशत तक कम करना था। कार्यक्रम देश के उन सभी जिलों जहां सन् 2001 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता दर 50 प्रतिशत से कम था तथा जो जिले चरम वामपंथ से पीड़ित थे वहां एक साथ लागू किया गया। यह कार्यक्रम वर्तमान में भी जारी है और इसके उपलब्धियों का सम्यक आंकलन करना अभी शेष है।

पर इतना तो स्पष्ट है कि असाक्षरता से संधर्ष प्रौढ़ शिक्षा क्षेत्र में संचालित कार्यक्रमों के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है। ऐसा इस लिए कि शिक्षा अधिकार अधिनियम के अनुसार मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा अब छः से चौदह वर्ष तक के बच्चों का मौलिक अधिकार है तथा इस हेतु देश में सर्वशिक्षा अभियान संचालित है। अपेक्षा के अनुसार इस उम्र के सभी बच्चे साक्षर होने चाहिए थे पर व्यवहार में ऐसा नहीं है। सर्वशिक्षा अभियान तथा स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में ड्रॉपआउट की भारी समस्या है। बड़ी संख्या में बच्चे विद्यालय में नामांकन तो करा लेते हैं पर विद्यालय जाते नहीं है। परिणामस्वरुप ऐसे अनेक बच्चे जो असाक्षार रह जाते हैं आगे चलकर असाक्षर व्यस्क आबादी का हिस्सा बन जाते हैं। इन्हें साक्षर बनाने का दायित्व भी प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों पर ही आ जाता है और रही असाक्षर प्रौढों की बात तो उनके लिए सम्यक चर्चा मात्र प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के तहत ही की जाती है ।

परन्तु प्रौढ़ शिक्षा की भी अपनी समस्यायें है जिन्हें हल करना आवश्यक है। ज्ञात है कि अनेक असाक्षर लोग ऐसे होते हैं जिन पर उनका पूरा परिवार आश्रित होता है। परिवार के लिए जीविका अर्जन का समूचा दायित्व इन पर होता है। यदि ये लोग अपने परिवारों की आवश्यकताओं को छोड़ कर शिक्षा ग्रहण करने लगें तो समूचे परिवार का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। ऐसे में इच्छा होने के बावजूद ये लोग नियमित रुप से साक्षरता कक्षाओं में उपस्थित नहीं हो पाते। इन्हें साक्षर बनाने के लिए विशेष रणनीति बनाने की आवश्यकता है।

ऐसे लोगों के लिए रात मे कक्षाएं संचालित की जानी चाहिए। साथ ही साथ ये लोग अपनी आजीविका के लिए लाभप्रद रोजगार प्राप्त कर सकें इसके लिए उन्हें उपयुक्त कौशल/ हुनर भी प्रदान किया जाना चाहिए। यह भी जरुरी है कि प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र स्थानीय लोगों के लिए सुविधाजनक स्थान पर स्थापित किया जाए तथा वहां पर संचालित होने वाले व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रमों का चयन वहां के लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। जैसे, यदि अलीगढ़ में प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र संचालित करनी हो तो उसे यहां के औघोगिक क्षेत्रों में स्थापित करनी चाहिए तथा यहां संचालित होने वाले सभी कार्यक्रमों से स्थानीय उद्योगपतियों को भी जोड़ा जाना चाहिए। पंचायत स्तर पर इस कार्य को सुचारू रूप से किया जा सकता है। यहां ग्रामीण क्षेत्रों मे छोटे–छोटे पुस्ताकालयों की स्थापना की जा सकती है ताकि अशिक्षित ग्रामीणों में शिक्षा के प्रति जाग्रति उत्पन्न हो तथा वे वर्तमान समय के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थियों से परिचित हो सकें।

अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़े वर्गों की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि इनमें साक्षरता कार्यक्रमों के प्रति जागरुकता उत्पन्न हो सके। प्रौढ़ शिक्षा के लिए हमारे पास संसाधनों की कमी नहीं है इसके लिए आवश्यकता है सामाजिक और राजनीतिक इच्छाशक्ति की। देश में लाखों की संख्या में आगनबाड़ी संचालित हैं। आगनबाड़ी के द्वारा न केवल नागरिक बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़ शिक्षा के लिए कक्षाएं संचालित की जा सकती हैं। इसके लिए शिक्षित युवाओं से आग्रह किया जा सकता है कि वे अपनी फुर्सत के समय से कुछ समय आगनबाड़ी केन्द्रो पर संचालित प्रौढ़ शिक्षा कॆंन्द्रों के लिए दें। इसी प्रकार देश में लगभग सात सौ से अधिक विश्वविद्यालय और हजारों डिग्री कॉलेज हैं। हमारे पास शिक्षा संस्थानो का जखीरा उपलब्ध है। इन सभी स्थानों पर प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था व्यावसायिक रूप से नहीं बल्कि मुफ्त में आयोजित की जानी चाहिए।

इन सभी के साथ – साथ साक्षरता दर बढ़ाने के लिए देश में एक ऐसे सामाजिक आन्दोलन की आवश्यकता है जिसमें समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो। जिसमें सामाजिक संस्थाएं, राजनीतिक दल, व्यापारी संगठन, धार्मिक संगठन, मजदूर संगठन तथा छात्र संगठन अपने संसाधनों का भरपूर उपयोग कर प्रौढ़ शिक्षा की मशाल को बुलन्द कर सकें। तभी सार्वभौमिक साक्षरता के लक्ष्य को छुआ जा सकेगा।

> मेरे दादा जी ने एक बार मुझसे कहा था कि दुनियां में दो तरह के लोग होते हैं – एक वो जो काम करते हैं और दूसरे वो जो श्रेय लेते हैं। उन्होंने मुझसे कहा था कि पहले समूह में रहने की कोशिश करो, वहां प्रतिस्पर्धा बहुत कम है।
>
> – श्रीमती इंदिरा गांधी

महिला समानता का संघर्ष

—ऋतु सारस्वत

वारसा यूरोपीय संसद में पोलैंड के एक सांसद ने वक्तव्य दिया कि 'महिलाएं बौद्धिक रूप से पुरूषों के बराबर होती हैं। पर महिलाओं को पुरूषों से कम वेतन मिलना चाहिए, क्योंकि वे कमजोर हैं, छोटी हैं।' यह बयान, हमें याद दिलाने के लिए काफी है कि महिला समानता का संघर्ष अभी बहुत देर तक चलेगा। यह कोरा मिथ है कि महिलाओं में जैविक रूप से भारी और कठोर काम करने की क्षमता नहीं होती। सन् 1930 के उत्तरार्ध और 1960 के मध्य में अंतः सांस्कृतिक आंकड़ों में स्वीकार किया गया था कि पुरूष, महिलाओं को सौंपे जाने वाले कार्य करने में अक्षम हैं और स्त्रियां पुरूषों के कार्यों को नहीं कर सकती। कुछ समाजों में आज भी बुनाई, कताई और खाना बनाने जैसे घरेलू कार्य पुरूष करते हैं, वहीं मोतियों के लिए गोताखोरी करना, डोंगी चलाना और घर बनाने जैसे साहसिक और कठोर कार्य स्त्रियां करती हैं। आदिम समाज की यह व्यवस्था आधुनिक समाजों में नहीं है और अगर अपवाद स्वरूप ऐसा हुआ भी, तो स्त्री को वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई जो पुरूषों को प्राप्त होती रही है और इसका मुख्य कारण पुरूषों का वर्चस्व है।

दरअसल, पुरूषों और स्त्रियों के मध्य व्याप्त असमानताएं प्राकृतिक नहीं, सामजिक हैं, क्योंकि ऐसा कोई जैविक कारण नहीं होता, जिससे यह स्वीकार किया जाए कि सार्वजनिक शक्ति संपन्न पदों पर स्त्रियों की उपस्थिति कम होना प्राकृतिक है। अगर स्त्रियां वाकई जैविक रूप से परिवार का मुखिया बनने या फिर पारिवारिक संपत्ति का उत्तराधिकार पाने कि लिए आयोग्य थी, तो फिर मातृवंशीय समाज वर्षों से सफलतापूर्वक क्यों चलते रहे? स्त्रियों की समानता के अधिकार की सबसे पहले मांग अमेरिकी क्रांति के दौरान मर्सी वारेन और एबिगेल एडम्स के नेतृत्व में उठी। उन्होंने स्त्रियों के मताधिकार और संपत्ति के अधिकार सहित सामजिक समानता की मांग करते हुए इसे संविधान में सम्मिलित करने के लिए दबाव डाला, पर प्रभुत्वशाली वर्ग के विरोध के कारण यह संभव नहीं हुआ।

समानता के अधिकार को लेकर संगठित स्त्री आंदोलन फ्रांसीसी क्रांति के दौरान शुरू हुए। समानता के लिए स्त्रियों के संघर्ष के लक्ष्य को समर्पित पहली पत्रिका का प्रकाशन क्रांति के दौरान फ्रांस में ही शुरू हुआ, वहीं क्रांतिकारी महिला क्लबों के रूप में स्त्रियों का पहला संगठन अस्तित्व में आया, जिसने सभी पक्षधर राजनीतिक संघर्षों में भागीदारी निभाते हुए मांग की कि आजादी, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धांत बिना किसी लिंगभेद के लागू किए जाने चाहिए। ओलिंप द गाउजेस ने मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा के माडॅल पर स्त्रियों और स्त्री नागरिकों के अधिकारों की घोषणा तैयार की। इस घोषणापत्र में स्त्रियों पर

पुरूषों के शासन का विरोध किया गया। पर ये सारे प्रयास पुरूषसत्तात्मक समाज ने दबा दिए।

विश्व भर के महिला संगठनों ने मैक्सिको शहर, कोपेनहेगन, नैरोबी और बेजिंग में हुए अंतरराष्ट्रीय महिला सम्मेलनों के मुद्दों को उठाया। सन् 1946 में संयुक्त राष्ट्र ने महिलाओं की स्थिति पर एक आयोग गठित किया। फलस्वरूप विश्व के अधिकतर देश महिला समानता के मुद्दे को लेकर जागृत हो रहे थे। विभिन्न मंचों से लेकर किताबों और अखबारों में इस विषय को उठाया जा रहा था।

भारत में तमाम सामजिक सुधार आंदोलनों के साथ कुछ ऐसी लेखिकाओं ने अपनी कलम के जरिए महिला समानता का प्रश्न उठाया, जो किसी उच्च पद पर नहीं थी। 1882 में स्त्री पुरूष तुलना नामक पुस्तक महाराष्ट्रीय गृहिणी ताराबाई शिंदे ने लिखी, जिसमें उन्होंने पुरूष प्रधान समाज द्वारा अपनाए गए दोहरे मापदंडो का विरोध किया। विज्ञान को पुरूष वर्चस्व का क्षेत्र मानने वाली समाज की सोच को तब आघात लगा जब 1908 में भारत में बेगम रूकैया ने 'सुल्तानाज ड्रीम' नामक पुस्तक लिखी।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी तक निरंतर महिलाओं की बौद्धिकता को शंका से देखा जा रहा था। 1963 तक अधिकतर अमेरिकी न तो यह विश्वास करते थे कि लैगिंक समानता संभव है और न ही वे इसकी आवश्यता समझते थे। यहां तक कि खुद महिलाएं ऐसा विश्वास करती थीं कि घर के महत्वपूर्ण निर्णय घर के पुरूष सदस्यों द्वारा लिए जाने चाहिए। 1962 में मिशिंगन विश्वविद्यालय द्वारा किए गए अध्ययन में दो तिहाई महिलाओं ने ये विचार रखे थे। 1977 तक दो तिहाई अमेरिका विश्वास करते थे कि पुरूष को बाहर का काम देखना चाहिए और स्त्रियों को घरेलू जिम्मेदारी। पर आगे चलकर स्त्रियों की सामजिक और लैगिंक समानता के स्वरों ने जोर पकड़ा और 1994 तक दो तिहाई अमेरिकीयों ने लैंगिक आधार पर श्रम विभाजन का विरोध करना शुरू कर दिया।

संयुक्त राष्ट्र ने अपने 2015 के बाद के विकास एजेंडे के पूर्ण कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए दुनियां भर में व्यापक अभियान शुरू किया है। इस अभियान का संदेश है : दुनियां अपने विकास लक्ष्यों को तब तक सौ प्रतिशत हासिल नहीं कर सकती जब तक कि इसके पचास प्रतिशत लोगों यानी महिलाओं के साथ सभी क्षेत्रों में पूर्ण और समान प्रतिभागियों के रूप में व्यवहार नहीं किया जाता है।

आर्थिक सश्क्तीकरण को महिला समानता के एक आधार बिंदु के रूप में देखा जाता रहा है। संरचनात्मक समायोजन के प्रतिक्रिया स्वरूप बीते दशकों में महिलांए खुद अपनी आर्थिक

क्रियाओं को बढ़ावा देने का प्रयास कर रही हैं। सामाजिक उत्तरदायित्व, घरेलू रख–रखाव और आय उत्पादक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। पर इसके चलते उन पर गहरा दबाव भी बढ़ा है। असमान वेतन महिला समानता पर एक बड़ा प्रश्न चिहन है। आर्थिक हिस्सेदारी और महिलाओं के लिए अवसरों के मामले में अब भी साठ प्रतिशत लैंगिक गैर–बराबरी है। विश्व आर्थिक फोरम में लैंगिक समानता अध्ययन की 2015 की रिपोर्ट बताती है कि एक सौ बयालीस देशों की सूची में भारत एक सौ चौहदवें स्थान पर है।

राजनीतिक सत्ता, स्त्री समानता का एक और महत्वपूर्ण आधारबिंदु है। इस संदर्भ में भी भारतीय महिलाओं के संघर्ष की लंबी यात्रा है। इंटर पार्लियामेंटरी यूनियन (आइपीयू) की रिर्पोट बताती है कि भारत की संसद या विधानसभाओं में महिला जनप्रतिनिधियों की काफी कम उपस्थिति उनके प्रति भेदभावपूर्ण राजनीतिक मानसिकता का प्रतीक है। आइपीयू की रिर्पोट 2015 के मुताबिक इस मोर्चे पर भारत को एक सौ पांचवां स्थान प्राप्त है। इस सूची में पहले दस नंबर पर रवांडा, बोलीविया, अंडोरा, क्यूबा, इक्वाडोर और दक्षिण अफ्रीका जैसे देश हैं, जो स्पष्ट करते हैं कि महिला समानता और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के माध्यम से महिलाओं के नेतृत्व को स्वीकार करने के लिए आर्थिक सबलता से कहीं अधिक वृहद दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

भारत में महिलाओं के लिए सबसे बढ़ी चुनौती जन्म लेना है। कोख में खत्म होने से अगर वे बच भी जाएं, तो विभिन्न अध्ययन बताते हैं कि बेटियों को बेटों, की अपेक्षा कम भोजन दिया जाता है। चाहे वह ग्रामीण क्षेत्र हो या शहरी, शिक्षा के स्तर पर बेटे और बेटियों के बीच अंतर साफ देखा जा सकता है। बेटियों को उन विषयों को चुनने को कहा जाता है, जिनसे विवाह के बाद उनकी घरेलू जिम्मेदारियां बाधित न हों। यों तो भारतीय संविधान ने, महिलाओं को समानता के तमाम अधिकार दे दिए हैं, पर सच यह है कि उन्हें हर स्तर पर अपने अधिकार पाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

आर्थिक जिम्मेदारियों को बराबर बांटने वाली भारतीय महिलाएं अपने लिए स्वयं कोई निर्णय नहीं ले सकती। इंडियन हयूमन डेवलपमेंट सर्वे के ताजा आंकड़े बताते है 79.8 प्रतिशत महिलाओं को अस्पताल जाने के लिए भी अनुमति लेनी पड़ती है। जनगणना के आंकड़े के अनुसार जीवन के आखिरी समय में 37.05 प्रतिशत महिलाएं अस्पताल में भर्ती हुईं, वहीं 62.05 प्रतिशत पुरुष अस्पताल में भर्ती हुए। सच तो यह है कि स्त्री की पीड़ा और उसकी इच्छा किसी के लिए कोई मायने नहीं रखती। स्वयं को समानता के मार्ग पर संचालित करने के लिए उसे रोज खुद ही कांटे निकालने होंगे। (साभार जनसत्ता)

IAEA Periodicals

The Association regularly brings out following periodicals:

INDIAN JOURNAL OF ADULT EDUCATION
(*Editor in Chief*: Prof. B.S. Garg; Editor: Dr. Madan Singh)

This internationally known quarterly is the leading journal on adult education and its allied areas, being brought out regularly since 1939, is running in the 78th year of its publication.

PROUDH SHIKSHA
(*Chief Editor: Prof. B.S. Garg; Editor*: Dr. Madan Singh)

This magazine in Hindi carries articles on empirical studies in the field of adult education, women empowerment, education, health, women problems, etc., and other material on developments in these areas.

IAEA NEWSLETTER
(*Editor in Chief*: *Prof. B. S. Garg ; Editor*: Dr. Madan Singh)

This monthly newsletter carries information on activities of IAEA and its branches along with news and developments in the field of adult education and its allied areas.

For information on their subscription, availability of back numbers for sale, etc., please write to: General Secretary, IAEA, 17-B, IP Estate, New Delhi - 110 002
Visit our Websites : iaea-india.org, iiale.org.in

E-Mail : iaeadelhi@gmail.com

हमारे लेखक

तुहिन देब
निदेशक
राज्य संसाधन केन्द्र
देशबन्धु काम्पलैक्स
रामसागरपाड़ा
रायपुर छतीसगढ़ – 492 001

रीना आर्य
प्रवक्ता
प्रौढ़ सतत् शिक्षा एवं प्रसार विभाग
हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल
केन्द्रीय विश्वविद्यालय
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड

बद्री प्रसाद वर्मा अनजान
अध्यक्ष–स्व मीनू रेडियो श्रोता क्लब
मल्लामंडी गोला बाजार गोरखपुर
उ. प्र. – 273 406

जसीम मौहम्मद
29, (ग्रराउड फलोर) मुजामिल
मंजिल काम्पलेक्स, धौलपुर
अलीगढ़
उत्तर प्रदेश – 202002

राजेन्द्रमोहन शर्मा
130, सेक्टर – 9
चित्रकूट, वैशाली नगर
जयपुर, राजस्थान

प्रौढ़ शिक्षा के लिए लेख आमंत्रित हैं

त्रैमासिक पत्रिका 'प्रौढ़ शिक्षा' (ISSN 2231-2439) प्रौढ़ एवं आजीवन शिक्षा क्षेत्र की एक प्रतिनिधि पत्रिका है जिसका प्रकाशन भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, नई दिल्ली द्वारा किया जाता है। विगत 60 वर्षों से यह पत्रिका नियमितरूप से प्रकाशित हो रही है।

स्वतंत्र लेखकों, पत्रकारों, प्राध्यापकों, शोध छात्रों एवं प्रौढ़ एवं आजीवन शिक्षा क्षेत्र से जुड़े प्रशासनिक अधिकारियों तथा अन्य सभी बुद्धिजीवियों से आग्रह है कि वे इस पत्रिका हेतु शिक्षा, प्रौढ़ एवं आजीवन शिक्षा, सामुदायिक शिक्षा, स्वयंसेवी प्रयास, महिला सशक्तीकरण, विकास, कौशल विकास, पर्यावरण, स्वास्थ्य, बाल विकास, सामाजिक समता, आर्थिक सशक्तीकरण जैसे तमाम विषयों पर अपने मौलिक लेख, शोध पत्र, संस्मरण, घटना वृतांत, कहानियां एवं कविताएं प्रेषित करें। लेख एवं शोध पत्र न्यूनतम 3000 से 5000 शब्दों के हो सकते हैं। लेखक अपनी रचनाएं हिन्दी के कृतिदेव 10 फोंट में टाईप कर उसकी ओपन फाईल directoriaea@gmail.com पर मेल कर सकते हैं।